MAA OMWATI DEGREE COLLEGE

HASSANPUR

NOTES

CLASS:- M.A. (HINDI) 1st SEM

SUBJECT: BHASHA VIGYAN EVAM HINDI BHASHA –I (MC)S

भाषाविज्ञान एवं हिन्दी भाषा

एम.ए. प्रथम वर्ष (प्रथम सेमेस्टर) : पेपर-4

Scanned with ACE Scanner

जब कोई भाषा देश के महत्त्वपूर्ण एवं व्यापक कार्यों में व्यवहृत होकर अपूर्व शक्ति ग्रहण कर लेती है, तो चलकर सर्जनात्मक साहित्य के अतिरिक्त राजनीति, रेडियो आदि के द्वारा जन-जन तक पहुँचने लगती है और एक साथ प्रत्येक क्षेत्र के लोग उसे जानने-समझने लगते हैं। तदनन्तर यह भाषा सभी सीमाओं को लाँघकर अधिक व्यापक और क्षेत्र में विचार-विनिमय का साधन बनकर सारे देश की भावात्मक एकता में सहायक होती है। फिर शासन-व्यवस्था स्वीकृत होकर वह राजभाषा का पद प्राप्त कर लेती है। हमारे देश में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद समस्त औपचारिक को संचालित करने के लिए हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकृति मिली है। सैद्धान्तिक दृष्टि से आज हिन्दी, शासन कार्यों में प्रयुक्त होती है। यह अध्ययन-अध्यापन की भी भाषा है। वैसे भारत की **राजभाषा** हिन्दी और अंग्रेजी दोनों प्रकार इंग्लैंड की राजभाषा अंग्रेजी है। भाषा का एक बहुप्रचलित रूप **मातृभाषा** है। वह भाषा जिसे कोई बालक अपने से अपनाता-सीखता है, मातृभाषा कहलाती है। दूसरे शब्दों में, बालक जिस परिवार में जन्म लेता है, उस परिवार के के द्वारा बोली जाने वाली भाषा वह सबसे पहले सीखता है, यही मातृभाषा कहलाती है। भाषा व्यवहार का सम्बन्ध वि व्यवसायों से भी है और विभिन्न व्यवसायों एवं कार्य-क्षेत्रों में प्रयुक्त भाषा एक-दूसरे से भिन्न भी होती है। जैसे चिकि व्यापार, कानून, आनुष्ठानिक विधि-विधान आदि क्षेत्रों की आम जीवन की भाषा से बिल्कुल अलग होती है। इस भाषा विशिष्ट भाषा कहा जाता है। आजकल भाषा के एक अन्य अंतरराष्ट्रीय भाषा की भी खूब चर्चा की जाती है। जब कोई विश्व के दो या दो से अधिक राष्ट्रों द्वारा बोली जाती है तो वह अंतरराष्ट्रीय भाषा बन जाती है। जैसे अंग्रेजी अंतरराष्ट्र भाषा है। इसके अतिरिक्त साहित्यिक भाषा, आलंकारिक भाषा, कूटभाषा, अपभाषा, विभाषा, गुप्तभाषा, मिश्रितभाषा कई विभाजन भी किये जा सकते हैं।

स्पष्ट है कि भाषा अपनी प्रकृति में ही अत्यन्त जटिल और बहुस्तरीय नहीं होती बल्कि अपनी प्रयोजन-क्षमता में भी बहुमु होती है। भाषा न केवल व्यक्ति के निजी अनुभवों एवं विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है। प्रत्युत वह सामाजिक सम्ब को कायम रखने का उपकरण भी है। भाषा-प्रयोग के ये विविध क्षेत्र भाषा को विभिन्न सन्दर्भों में देखने के लिए बाध्य करते भाषा को परिभाषित करते समय विभिन्न विद्वान् इन विभिन्न रूपों को महत्त्व देते हैं। इस पाठ के अगले हिस्से में भाषा के इ सभी रूपों को ध्यान में रखकर भाषा की परिभाषा और उसके स्वरूप को समझने का प्रयास किया जायेगा।

◆◆◆

भाषा के अध्ययन क्षेत्र

भाषा के अध्ययन के कौन-कौन से क्षेत्र हैं? विस्तारपूर्वक स्पष्ट करें।

अथवा

भाषा के विभिन्न अध्ययन-क्षेत्रों का परिचय दीजिए।

उत्तर–भाषा अध्ययन के क्षेत्र–भाषा भावाभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसका मतलब यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति का स्तर उसके अभिव्यक्ति के स्तर से ही जाना जाता है। अभिव्यक्ति के बिना मानव जीवन व्यर्थ है। भाषा की विशेषताओं की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट किया जा चुका है कि भाषा मानव की वह सम्पत्ति है जिसे वह उत्तराधिकार में प्राप्त करता है लेकिन भाषा को मानव स्वयं भी अर्जित कर सकता है। भाषा और मानव का संबंध अटूट और सर्वाधिक प्राचीन है। जिस समय मानव सर्वप्रथम अस्तित्व में आया उस समय वह किसी प्रकार की भाषा को नहीं जानता था। केवल निरर्थक ध्वनियों का प्रयोग करता होगा, संकेतों द्वारा काम चलाता होगा या कोई और साधन प्रयोग में लाता होगा। जैसे-जैसे मानव सभ्यता के सोपानों को पार करता गया, वैसे-वैसे उसने अपनी भाषा को समृद्ध किया और उसे सुसंस्कृत बनाया। भाषा के विकास का ही परिणाम है कि आज मानव भावाभिव्यक्ति में और भाव संप्रेषण में अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ माना जाता है। भाषा का उच्चरित रूप यदि भावों की अभिव्यक्ति और विचारों के आदान-प्रदान का साधन है तो लिखित रूप भावों की स्थिरता और संप्रेषण का साधन है। इसीलिए कहा गया है कि भाषा के अध्ययन के अनेक क्षेत्र हैं जिन्हें दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

Scanned with ACE Scanner

(क) साधन रूप में भाषा अध्ययन

साधन रूप में भाषा अध्ययन के निम्नलिखित क्षेत्र हैं–

1. व्यक्तिगत जीवन की सफलता–व्यक्तिगत जीवन को सफल बनाने में भाषा का विशेष योगदान है। भाषा व्यक्तिगत जीवन का मूलाधार है। भाषा के बिना मानव का व्यक्तिगत जीवन चल ही नहीं सकता। भाषा के बिना जीवनयापन बड़ा ही कठिन है। यदि हम यह कहते कि संकेतों से काम चलाया जा सकता है तो यह उचित नहीं होगा। गूंगे व्यक्ति के जीवन को देखकर यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि भाषा के बिना जीवन व्यतीत करना कितना कठिन है। इसीलिए यह यह कहा गया है कि भाषा मानव-जीवन का मेरुदण्ड है। भाषा के बिना न तो मानव घर में आपसी व्यवहार कर सकता है और न ही सामाजिक जीवन में भाग ले सकता है। भाषा द्वारा मानव अन्य लोगों के साथ संबंध स्थापित करता है और उन संबंधों को सुदृढ़ता प्रदान करता है। बाल्यकाल से वृद्धावस्था तक के जीवन का सहज मूल्यांकन करने से यह पता चल जाता है कि भाषा का जीवन से कितना गहरा संबंध है। शैशवकाल में शिशु रोकर ही अपने दुःख अथवा कष्ट को व्यक्त करता है। उसके माँ-बाप या भाई-बहन केवल अटकलें ही लगाते हैं। यह जानना कठिन होता है कि उसके पेट में दर्द है या कान में दर्द है। थोड़ा बड़ा होकर बच्चा टूटे-फूटे शब्द बोलना सीख जाता है। वह पानी को आनी, रोटी को ओची और दूध को दू कहकर पुकारता है। कुछ और बड़ा होने पर वह माँ-बाप से मातृभाषा को सीखता है और आसपास के मित्रों व साथियों के साथ खेल-कूद में भाग लेते समय बहुत कुछ सीख जाता है। बड़ा होकर वही बच्चा घर-परिवार, स्कूल अथवा कॉलेज में शिक्षा ग्रहण करते समय भाषा के द्वारा भावों तथा विचारों को व्यक्त करने में समर्थ हो जाता है। इससे यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि मानव के व्यक्तिगत जीवन की सफलता भाषा पर ही निर्भर है, बल्कि समाज में प्रवेश करने के लिए भाषा सर्वथा अनिवार्य है। अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वैयक्तिक जीवन की सफलता भाषा अध्ययन का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है।

2. सामाजिक जीवन की सफलता–प्रत्येक समाज को सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने में भाषा का सर्वाधिक योगदान है। कारण यह है कि भाषा सामाजिक जीवन का मूल आधार है। समाज के सभी व्यक्तियों की कोई न कोई एक ऐसी भाषा होती है जिसके द्वारा वे परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करते हैं और एक-दूसरे के प्रति अपनी आकांक्षाओं को व्यक्त करते हैं और अपने उद्‌गारों को अभिव्यक्ति करते हैं। भाषा के बिना कुछ नहीं हो सकता। भाषा द्वारा ही हम एक-दूसरे के मनोभावों को समझ सकते हैं और अपने जीवन का विकास कर सकते हैं। इस संदर्भ में चॉम्स्काई ने उचित ही कहा है–

"A correct understanding of nature of Language will enable us to understand human mind." अर्थात् भाषा को ठीक प्रकार से समझना हमें मानवीय मन को समझने के योग्य बना देता है।"

भाषा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हमारे सामाजिक जीवन का स्तर निश्चित होता है और समाज में हम अपनी रीति-नीतियों और सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार करते हैं। यदि किसी समाज में भाषा न हो तो उसकी स्थिति जंगली पशुओं जैसी होगी। ऐसा समाज भाषा के बिना सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा साहित्य क्षेत्रों में प्रगति नहीं कर सकता। वन्य पशुओं के अपने अलग-अलग समाज हैं। उनमें भी कुछ नियम होने होंगे जिसके आधार पर वे आपस में मिलजुल कर रहते हैं। आज डिस्कवरी चैनल तथा नैशनल ज्योग्राफी चैनल पर वन्य जीवों के समाज, ज्योग्राफी झुण्डों आदि को इस प्रकार दिखाया जा रहा है जिनसे पता चलता है कि प्रत्येक वन्य प्रजाति के अपने कुछ नियम हैं जिनका वे पालन करते हैं। परंतु उनके पास मानव जैसी भाषा नहीं है। अतः यदि मानव के पास भाषा न हो तो वह पशु ही कहा जाएगा। भाषा के बिना मानव संस्कृति, सभ्यता, धार्मिकता, साहित्य आदि क्षेत्रों में प्रगति नहीं कर सकता। भाषा मनुष्य को सभ्य और सुसंस्कृत बनाती है, सामाजिक चेतना उत्पन्न करती है और धर्म, नीति, राजनीति, साहित्य के द्वारा मानव जाति को गतिशील बनाती है। अतः यह स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन की सफलता भाषा अध्ययन का एक और क्षेत्र है।

3. सांस्कृतिक विकास का आधार–भाषा संस्कृति का भी मूलाधार है। इस संदर्भ में **डॉ. रत्नचंद शर्मा** ने लिखा भी है–**"मानव जिन रीति-रिवाजों को अपनाता है, जिस रहन-सहन की प्रणाली को जीवन-यापन का आधार बनाता है और जिन संस्कारों को लेकर संसार में गतिशील होता है उन सब का मूलाधार संस्कृति है एवं संस्कृति का आधार भाषा है। इसीलिए भाषा का अध्ययन आवश्यक है। किसी भी समाज की संस्कृति को जानने के लिए आवश्यक है कि उस समाज की भाषा का अध्ययन किया जाए और उसके साहित्य को समझा जाए। भाषा के अध्ययन के बिना न तो उस समाज के साहित्य को समझा जा सकता है और न ही उसकी संस्कृति को जाना जा सकता है।"** उपर्युक्त कथन से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है जिस समाज के पास भाषा नहीं है उसकी अपनी संस्कृति नहीं होती। ऐसे समाज में स्थिरता भी नहीं आ सकती। भाषा के बिना ऐसे समाज में जनजीवन की स्थिति पतवार

Scanned with ACE Scanner

रहित नौका जैसी होती है जो कभी भी डूब सकती है। परंतु जिस समाज के पास परिष्कृत और परिमार्जित भाषा है वह श्रेष्ठ उच्च साहित्य की रचना करने में समर्थ हो सकता है। यही नहीं वह अपनी संस्कृति को समुन्नत और चिरस्थायी बना सकता है। परिमार्जित भाषा वाला समाज अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों द्वारा दूसरों का भी मार्गदर्शन कर सकता है।

4. शिक्षा प्राप्ति का साधन–भाषा सभी प्रकार की शिक्षा का माध्यम है। धर्म, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, नीति, राजनीति, अर्थशास्त्र, ज्ञान-विज्ञान, आध्यात्मिकता आदि सभी विषयों की शिक्षा भाषा के माध्यम से ही दी जाती है। चाहे शास्त्रीय शिक्षा ग्रहण करनी हो अथवा व्यावहारिक शिक्षा, हमें भाषा की ही शरण लेनी पड़ती है। भाषा द्वारा ही शिक्षा का पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाता है और भाषा के माध्यम से ही विद्यार्थी उस पाठ्यक्रम को पढ़ता है। यदि भाषा न हो तो न तो पाठ्यक्रम तैयार हो सकता है, न विद्यार्थी पढ़ सकता है और न ही अध्यापक पढ़ा सकता है। यहाँ तक कि भाषा के अभाव में स्कूलों और कॉलेजों की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। भाषा द्वारा शिक्षा ग्रहण की जा सकती है और दी जा सकती है। भाषा के बिना ज्ञानार्जन भी संभव नहीं है। यदि हम गहराई से देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भाषा के बिना न तो हमारा घर-परिवार सुरक्षित है, न समाज और न ही सरकार। चाहे सामाजिक कार्य हों, आध्यात्मिक कार्य अथवा सरकारी कार्य, सर्वत्र भाषा की ही शरण ग्रहण की जाती है।

5. साहित्य सृजन का लक्ष्य–भाषा का अध्ययन साहित्य सृजन के लिए भी नितांत आवश्यक है। जिस प्रकार साहित्य और समाज आपस में जुड़े हुए हैं उसी प्रकार भाषा साहित्य से जुड़ी हुई है। भाषा साहित्य का न केवल अनिवार्य अंग है, बल्कि उसका आधार भी है। यदि भाषा है तो साहित्य है। भाषा नहीं है तो साहित्य भी नहीं है। साहित्य समाज के भावों तथा विचारों का प्रतिबिंब माना गया है परंतु समाज अपने भावों, विचारों को भाषा के बिना अभिव्यक्त नहीं कर सकता। इसीलिए साहित्य सृजन के लिए भाषा अनिवार्य है। साहित्यकार साहित्य में समाज के भावों तथा विचारों को लिपिबद्ध करता है और उन्हें भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित बनाता है। भाषा के बिना यह सब नहीं हो सकता। यदि भाषा न होती तो हम वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास, टैगोर, शेक्सपीयर, मिल्टन, हुमर आदि महान कवियों और साहित्यकारों के विचारों को न जान पाते। भाषा के बिना न तो हमारे पास इतिहास ग्रंथ होते और न ही हम राजा-महाराजाओं, ऋषि-मुनियों, देव-देवताओं को जान पाते। आज भाषा के कारण ही मानव ने वैज्ञानिक क्षेत्र में उन्नति प्राप्त की है। भाषा के कारण ही कवियों, दार्शनिकों तथा वैज्ञानिकों के विचार हमारे समक्ष हैं। इस संदर्भ में **डॉ. आर. सी. शर्मा** ने उचित ही लिखा है–**"भाषा ही ऐसी संवाहिका शक्ति है जो कवियों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों और साहित्यकारों के विचारों को स्थिरता प्रदान करती है, हम तक पहुंचाती है और भावी पीढ़ियों का मार्ग-दर्शन करती है। अतः साहित्य भाषा का लक्ष्य है और साहित्य के लिए भाषा अनिवार्य है।"**

(ख) साध्य रूप में भाषा का अध्ययन

साध्य रूप में भाषा के क्षेत्र का तात्पर्य है–**भाषा केन्द्रित अध्ययन। जब भाषा का अध्ययन जीविका का उपार्जन या व्यवहार** की दक्षता अथवा सफलता के लिए किया जाता है तो वह साधन रूप में भाषा का अध्ययन कहलाता है परंतु जब अध्ययन का केन्द्रीय विषय भाषा ही हो तो उसे भाषा का साध्य रूप अध्ययन कहा जाएगा। भाषा को विषय बनाकर भाषा का वैज्ञानिक विधि से तर्कसम्मत वस्तुनिष्ठ अध्ययन ही भाषा का साध्य रूप अध्ययन कहलाता है। यह साध्य रूप अध्ययन अनेक प्रकार का है–

1. भाषा संरचना का अध्ययन–अध्ययन करने वाला व्यक्ति अपनी भाषा अथवा किसी अन्य देश की भाषा की ध्वनि व्यवस्था, शब्द भण्डार, पद रचना (रूप रचना), वाक्य रचना, अर्थ संप्रेषण, लिपि आदि की दृष्टि से संरचनात्मक अध्ययन कर सकता है। संरचनात्मक अध्ययन से भाषा की मूल प्रकृति को जाना जा सकता है। साथ ही उसकी अर्थ संप्रेषण शक्ति का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस अध्ययन से भाषा की त्रुटियों को भी सुधारा जा सकता है ताकि अर्थ संप्रेषण की दृष्टि से वह समर्थ तथा वैज्ञानिक भाषा बन सके।

2. तुलनात्मक अध्ययन–प्राचीन तथा अर्वाचीन भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन भाषाओं के इतिहास को जानने में अत्यधिक उपयोगी हो सकता है। इस अध्ययन के अंतर्गत दो भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन होता है। दोनों भाषाओं के मूल बिंदुओं- ध्वनि, शब्द-रूप, वाक्य आदि को आधार बनाकर दोनों भाषाओं की परस्पर तुलना की जाती है। तुलनात्मक अध्ययन द्वारा प्राचीन अथवा अर्वाचीन कवियों की काव्य भाषा की तुलना अत्यधिक उपयोगी होती है और यह भाषाओं के इतिहास के लिए भी अत्यधिक उपयोगी है।

3. शैली वैज्ञानिक अध्ययन–शैली विज्ञान की दृष्टि से भाषाओं का अध्ययन अत्यधिक सार्थक और उपयोगी माना गया है। शैली विज्ञान में कवि विशेष की भाषा और शैली का वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन से पता चलता कि किसी

Scanned with ACE Scanner

कवि ने अपनी विशेष अनुभूति को किस ढंग से व्यक्त किया है और किन-किन भाषिक उपादानों का किस-किस प्रकार उपयोग किया है। कवि का अध्ययन विधान, उसकी प्रत्येक योजना, उपमान योजना आदि के प्रयोग के बारे में हमें सही ज्ञान हो सकता है। कुछ कवि विचलन के अनूठे प्रयोगों द्वारा अभिव्यक्ति को अत्यधिक प्रभावशाली बना देता है। एक कवि की पंक्ति देखिए–

कई बगुले आए मुझे बुझाने को–

प्रस्तुत पद्य पंक्ति में बुझाना क्रिया से हमें दीपक का बोध होने लगता है। इसका अर्थ यह होगा कि कवि की आंतरिक चेतना दीपक के समान प्रकाशमान थी। उस चेतना रूपी दीपक को बुझाने के लिए उसके जीवन में अनेक मुसीबतें आईं। बाधाओं तथा कष्टों ने कवि की चेतना को विचलन करने का प्रयास किया। यहाँ कवि ने शैली वैज्ञानिक दृष्टि से विचलन का प्रयोग किया है अर्थात् **एक संदर्भ की शब्दावली को मूल से हटाकर किसी दूसरे संदर्भ में प्रयुक्त किया है।**

प्रत्येक कवि की शैली अपनी होती है। उसकी शैली में भाषा, छंद, अलंकार, बिंब, प्रतीक आदि सभी समाहित होते हैं। इन सबका अध्ययन करना ही शैली वैज्ञानिक अध्ययन कहलाता है। अतः शैली विज्ञान के अध्ययन द्वारा हम भाषा के सामर्थ्य को जान सकते हैं।

4. ऐतिहासिक अध्ययन–भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन करना भाषा विज्ञान के लिए अत्यधिक उपयोगी है। यह अध्ययन प्रत्येक भाषा के उद्भव और विकास से हमें परिचित करवाता है। इससे भाषा संरचना में आने वाले परिवर्तनों को भी जाना जा सकता है। यदि हम वर्तमान हिंदी भाषा के इतिहास का अध्ययन करें तो पता चलता है कि यह भाषा वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ट तथा पुरानी हिन्दी के सोपानों को पार करती हुई वर्तमान तक पहुंची है। यही कारण है कि आज की हिन्दी में इन सभी प्राचीन भाषाओं के शब्द विद्यमान हैं। यही नहीं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी भाषा को समृद्ध बनाने में संस्कृत भाषा की विशेष सहायता ली गई है। अतः विभिन्न भाषाओं की विकास यात्रा का ऐतिहासिक अनुशीलन न केवल रोचक है, बल्कि ज्ञानवर्धन भी है।

5. भौगोलिक अध्ययन–भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के अंतर्गत भौगोलिक प्रभाव का ध्वनि विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन किया जाने लगा है। यह अध्ययन भाषा वैज्ञानिकों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। अभी तक भाषा वैज्ञानिकों ने इस दृष्टि से विशेष अध्ययन नहीं किया कि भौगोलिक तथा प्राकृतिक परिवेश का किसी भाषा के शब्द भण्डार पर कैसा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के रूप में कालिदास के मेघदूत, रघुवंश, कुमारसंभव और बाणभट्ट की कादम्बरी आदि रचनाओं में विशेष भौगोलिक तथा प्राकृतिक दृश्यों और उससे संबद्ध शब्दावली का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। मेघदूत में बादलों की यात्रा द्वारा जो हिमालय पर्वत और उसकी तरक्की का चित्रण किया गया है। वह अत्यंत रोचक और ज्ञानवर्धक है। इसी प्रकार रघुवंश के 13वें सर्ग में राम की लंका से लेकर अयोध्या तक की विमान यात्रा का भौगोलिक तथा प्राकृतिक परिवेश का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। वाल्मीकि रामायाण में राम बनवास के संदर्भ में वन प्रदेश का जो चित्रण किया गया है वह भी भौगोलिक अध्ययन की दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी हो सकता है। इसी प्रकार सूरदास और तुलसीदास द्वारा भौगोलिक और प्राकृतिक शब्दावली का प्रयोग किया गया है। भाषा शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से वह भी हमारे लिए महत्त्वपूर्ण होगा।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि भाषा के अध्ययन क्षेत्र अनेक हैं। इससे संबंधित अध्ययन मानव जाति के लिए अत्यधिक उपयोगी है। भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन भाषा में समय-समय पर होने वाले परिवर्तनों की ओर हमारा ध्यान दिलाता है और हमारे ज्ञान में वृद्धि करता है।

◆◆◆

भाषा की व्यवस्था और व्यवहार

भाषा-व्यवस्था और भाषा व्यवहार से क्या अभिप्राय है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

अथवा

भाषा व्यवस्था एवं भाषा व्यवहार की विवेचना कीजिए।

उत्तर–भाषा व्यवस्था एवं भाषा व्यवहार–भाषा व्यवस्था एवं भाषा व्यवहार शब्दों का प्रयोग **डॉ. भोलानाथ तिवारी** ने पाश्चात्य विद्वान **सस्यूर** द्वारा प्रयुक्त भाषा ***(Langue)*** तथा वाक् ***(Parole)*** के स्थान पर किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि भाषा

Scanned with ACE Scanner

एक व्यवस्था है, जो किसी भाषा के सभी भाषियों के मस्तिष्क में भाषिक क्षमता (Competence) ... है। वाक् उस भाषा-भाषी समाज के व्यक्ति द्वारा उस भाषा का प्रयुक्त या व्यवहृत रूप है। डॉ. भोलानाथ तिवारी की इस स्थापना के आलोक में भाषा व्यवस्था एवं भाषा व्यवहार का अध्ययन इस प्रकार कर सकते हैं–

(क) भाषा-व्यवस्था का विवेचन

भाषा से अभिप्राय मानवीय भाषा से है जिसे मानव समाज में रहते हुए वह सीखता है। इसका मतलब हुआ कि भाषा का समाज के साथ गहरा सम्बन्ध है। भाषा समाज पर निर्भर है और समाज भाषा पर। जैसे-जैसे मानवीय समाज का गठन हुआ, वैसे-वैसे भाषा का विकास होता चला गया। आरम्भ में मानव विभिन्न प्रकार के संकेतों द्वारा अपने साथियों के साथ विचार विनिमय करता था। आगे चलकर मानव ने दृष्टि संकेतों तथा स्पर्श संकेतों को त्यागकर श्रव्य संकेतों का सहारा लिया। फलस्वरूप भाषा को एक व्यवस्थित रूप मिल गया। इसी आधार पर भाषा के दो रूपों की चर्चा की जाती है–भाषा-व्यवस्था और भाषा-व्यवहार। **डॉ. भोलानाथ तिवारी** भाषा व्यवस्था *(Language System)* तथा भाषा व्यवहार *(Language Behaviour)* के विषय में कहते हैं–**सस्यूर द्वारा प्रयुक्त फ्रांसीसी शब्द (Language) तथा (Parole) (जो अंग्रेजी में चलते हैं) के प्रति शब्द के रूप में हिन्दी में क्रमशः 'भाषा' और 'वाक्' का प्रयोग चलता रहा है। अब लगता है कि ये प्रतिशब्द सस्यूर के मन्तव्य को व्यक्त नहीं कर पाते। अतः इन्हें क्रमशः 'भाषा-व्यवस्था' (Language System) और 'भाषा-व्यवहार' (Language Behaviour) कहना कदाचित् अधिक ठीक है।''** विद्वानों ने इन दोनों शब्दों के प्रयोग को तर्क संगत कहा है। इस संदर्भ में डॉ. देवीशंकर द्विवेदी ने जो भाषा की परिभाषा दी है वह विशेष महत्त्व रखती है–**''भाषा यादृच्छिक वाक्-प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से मानव-समुदाय परस्पर व्यवहार करता है।''** इस सन्दर्भ में डॉ. वी.डी. शर्मा ने उचित ही लिखा है–**''जब अभिव्यक्ति का माध्यम अनेक लोगों के बीच सेतु बनता है, तो उसमें एक नियमबद्धता का आना स्वयंसिद्ध होता है, क्योंकि एकाधिक लोगों के बीच कोई भी व्यापार एवं व्यवहार किसी व्यवस्था के साथ ही सम्भव हो सकता है तथा कोई सुनिश्चित योजनाबद्धता ही व्यवस्था कहलाती है। एक व्यक्ति को जब अपनी बात समुदाय में कहनी होती है या एक-एक से अलग-अलग करनी होती है, तो उसमें श्रोता और वक्ता के मध्य एकरूपता का होना अनिवार्य है। इसलिए भाषा में एक ओर यादृच्छिकता एवं प्रतीकात्मकता की उपस्थिति भी बताई गई है, तो दूसरी और व्यवस्था की बात भी कही गई है।''**

भाषा की व्यवस्था ही उसे सार्वभौम तथा सनातन बनाती है। भाषा के लिए व्यवस्था का होना अनिवार्य है क्योंकि व्यवस्था के बिना हम भाषा के द्वारा अपने विचारों को व्यक्त नहीं कर सकते। संसार की ऐसी कोई भाषा नहीं है जिसमें व्यवस्था नहीं होती। यह बात अलग है कि संसार की सभी भाषाओं की अलग-अलग व्यवस्था होती है। एक भाषा में यदि एक विशेष प्रकार की व्यवस्था है तो दूसरी भाषा में दूसरी व्यवस्था देखने को मिलेगी। उदाहरण के लिए संसार सभी भाषाओं का एक सुनिश्चित व्याकरण है। यह सब भाषा की व्यवस्था का ही परिणाम है।

भारत में सर्वप्रथम वैदिक संस्कृत का प्रचलन होता था। बाद में लौकिक संस्कृत और उससे पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के परिवर्तित रूप हमारे सामने आए। परन्तु जो व्यवस्था संस्कृत भाषा में थी, वह पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश से भिन्न प्रकार की थी। जैसे-जैसे किसी नई भाषा का विकास होता है तो वह अपनी अलग प्रकार की व्यवस्था को अपना लेती है। भाषा में कुछ व्यस्थाएं अमूर्त होती हैं कुछ मूर्त होती हैं अर्थात् कुछ स्थूल होती हैं कुछ सूक्ष्म होती हैं। परन्तु भाषा की व्यवस्था के अनेक स्तर हो सकते हैं जिनका विवेचन इस प्रकार से है–

1. स्वनात्मक व्यबस्था–भाषा की छोटी से छोटी इकाई को **'स्वन'** कहते हैं। ध्वन्यात्मक परिवेश की भिन्नता के कारण ये एक-दूसरे से भिन्न प्रकार के होते हैं। उदाहरण के रूप में हिन्दी भाषा में क्, ख्, ग्, घ्, ङ् आदि अलग-अलग स्वन हैं। इनकी भिन्नता को स्पष्ट करने के लिए हम कुछ उदाहरण दे सकते हैं।

''कल, कर, कब
कल–क् + अ + ल् + अ
कर–क् + अ + र् + अ
कब–क् + अ + ब् + अ

इन तीनों शब्दों में कल का प्रथम 'अ', कर का प्रथम 'अ', कब का प्रथम 'अ' तीनों एक-दूसरे से भिन्न हैं क्योंकि पहले की परिवर्तित ध्वनि ल् है दूसरे की 'र्' है और तीसरे की परिवर्तित ध्वनि 'ब्' है। अतः परिवर्तित ध्वनियों के कारण तीनों शब्दों में भिन्नता उत्पन्न हो गई है।

Scanned with ACE Scanner

इस प्रकार परिवेशमूलक भिन्नताओं वाली स्वन इकाइयों को एक इकाई का सदस्य बनाकर स्वनिम की परिकल्पना कर ली जाती है। प्रत्येक स्वनिम के अनेक स्वन होते हैं परन्तु ये एक निश्चित व्यवस्था के अनुसार प्रयुक्त होकर काम करते हैं। इसी प्रकार हम समस्वनों की भी चर्चा कर सकते हैं।

2. स्वनिम व्यवस्था–स्वनों के समान स्वनिमों की एक सुनिश्चित व्यवस्था होती है। भाषा के प्रत्येक श्रुति-स्वन को स्वन कहते हैं। **स्वनिम उच्चरित भाषा की ऐसी लघुत्तम इकाई है जिससे दो ध्वनियों का अन्तर स्पष्ट होता है।** स्वनिम उच्चरित भाषा की प्रमुख विशेषता है। हिन्दी में स्वनियों के दो भेद किए गए हैं–खण्ड्येय स्वनिम और खण्ड्येतर स्वनिम। हिन्दी भाषा में स्वनों के समान स्वनिमों की भी एक निश्चित व्यवस्था है। प्रत्येक भाषा के स्वनिमों की अपनी व्यवस्था है और वह अन्य भाषाओं की स्वनिम व्यवस्था से मेल नहीं खाती। प्रत्येक भाषा की स्वनिम व्यवस्था इस बात का निर्णय करती है कि उसमें कितने और कौन-से स्वनिम किस क्रम में आ सकते हैं। उदाहरण के रूप में हिन्दी भाषा में क, ख, ग, घ, ङ आदि इस क्रम में प्रयुक्त नहीं हो सकते। इस प्रकार ङ, अ आदि स्वनिम शब्द के आरम्भ में प्रयुक्त नहीं हो सकते। अंग्रेजी में भी A B C D आदि इस क्रम में प्रयुक्त नहीं हो सकते। अतः स्वनिमों को शब्दों में प्रयुक्त करने की पद्धति प्रत्येक भाषा की अलग प्रकार की है।

3. वाक्य व्यवस्था–पदों के समूह से वाक्यों का निर्माण होता है परन्तु वाक्य की भी अपनी व्यवस्था होती है। पतंजलि ऋषि ने **सांकांश पदों के समूह को वाक्य माना है** और आचार्य विश्वनाथ ने **आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति से युक्त पदों के समूह को वाक्य कहा है।** अन्य शब्दों में, हम कह सकते हैं कि वाक्य पदों का ऐसा समूह होता है जो योग्यता, पदक्रम, अन्वति आदि की दृष्टि से उपयुक्त होता है। प्रत्येक वाक्य में पदों का ही एक क्रम रहता है। एक भाषा के वाक्यों में पदों का क्रम अलग प्रकार का है और दूसरी भाषा में अलग प्रकार का है। उदाहरण के रूप में हिन्दी भाषा में कर्ता के बाद कर्म फिर क्रिया का क्रम रहता है। जबकि अंग्रेजी के भाषा में कर्ता के बाद क्रिया फिर कर्ता का क्रम होता है।

"राम ने रावण को मारा।" (कर्ता + कर्म + क्रिया)

Ravana killed Rama.

(कर्ता + क्रिया + कर्म)

वाक्य-विस्तार में विशेषण, विस्तारक, क्रिया विशेषण आदि के प्रयोग की सम्भावनाएं भी अलग-अलग देखने को मिलती हैं। वाक्य विज्ञान के अन्तर्गत वाक्यों के प्रकार और उनकी संरचना विधान की भी चर्चा की जाती है। यही नहीं वाक्य-परिवर्तन दिशाएं तथा उनके कारणों का भी विवेचन होता है। परन्तु प्रत्येक भाषा में वाक्यों का इस प्रकार विवेचन अलग-अलग प्रकार का होता है। इसे हम वाक्यात्मक व्यवस्था कह सकते हैं। यदि हम और गहराई से वाक्य-व्यवस्था की विवेचना करें तो ये व्याकरण ारिक कोटियों के आधार पर ही हो सकती है। जिसका विवेचन इस प्रकार है।

(i) वचन व्यवस्था–वाक्य में एक पद के अनुसार दूसरे पद की व्यवस्था की जाती है जिसे हम अन्विति कहते हैं। वाक्य में वचन अन्विति का होना आवश्यक है। हिन्दी की वचन व्यवस्था संस्कृत की वचन व्यवस्था की अपेक्षा काफी सरल है क्योंकि संस्कृत में तीन वचन हैं और हिन्दी में दो वचन हैं। इसी व्यवस्था के अनुसार वाक्यों में पदों की योजना होती है। उदाहरण के रूप में–

(क) (i) लड़का खेल रहा है। (ii) लड़का खेल रहा था।
(iii) लड़का खेल रहा होगा।

(ख) (i) लड़के खेल रहे हैं। (ii) लड़के खेल रहे थे।
(iii) लड़के खेल रहे होंगे।

आरंभ के तीनों वाक्यों में 'लड़का' एकवचन है और कर्ता पद के अनुसार क्रिया पद का प्रयोग एकवचन में हुआ है। लेकिन बाद के तीनों वाक्यों में कर्ता के पद 'लड़के' बहुवचन क्रिया के अनुसार है। यदि हम इस व्यवस्था को भंग करने का प्रयास करेंगे तो वाक्य व्यवस्था में बाधा उत्पन्न हो जाएगी।

(ii) लिंग व्यवस्था–वाक्य की रचना करते समय हम उसके पदों में विभिन्न लिंगों की योजना करते हैं। संस्कृत में यदि तीन लिंग हैं तो हिन्दी में दो लिंग हैं। लिंग का अर्थ है–चिह्न जिससे किसी के नर या मादा होने की पहचान की जाती है। प्रत्येक भाषा में लिंग व्यवस्था भी अपनी प्रकार की होती है। विशेषकर हिन्दी भाषा में लिंग व्यवस्था काफी मुखर है। यहां कर्ता पद के अनुसार ही क्रिया का प्रयोग होता है। उदाहरण के रूप में–

(क) (i) लड़का पुस्तक पढ़ रहा है। (ii) लड़का पुस्तक पढ़ रहा था।
(iii) लड़का पुस्तक पढ़ रहा होगा।

Scanned with ACE Scanner

(ख) (i) लड़की पुस्तक पढ़ रही है। (ii) लड़की पुस्तक पढ़ रही थी।
(iii) लड़की पुस्तक पढ़ रही होगी।

पहले तीन वाक्यों में 'लड़का' पद के अनुसार क्रिया का प्रयोग हुआ है। स्पष्ट है इन तीनों वाक्यों में लड़का (पुल्लिंग व्याकरण) कोटि अनुसार प्रयुक्त हुआ है। लेकिन बाद के तीनों वाक्यों में स्त्रीलिंग व्याकरण कोटि की व्यवस्था लागू हुई है। इसीलिए लड़का पद के अनुसार (पढ़ रहा है), (पढ़ रहा था), (पढ़ रहा होगा) क्रियापदों की व्यवस्था की गई है तथा लड़की पद के अनुसार (पढ़ रही है), (पढ़ रही थी), (पढ़ रही होगी) क्रियापदों की व्यवस्था की गई है।

(iii) पुरुष व्यवस्था–भाषा व्यवस्था में पुरुष व्यवस्था का भी विशेष महत्त्व होता है। संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं में तीन पुरुषों की व्यवस्था की है। केवल उनके नामकरण में थोड़ी-सी भिन्नता हैं। लौकिक संस्कृत में प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा उत्तम पुरुष की व्यवस्था है परन्तु हिन्दी में उत्तम पुरुष को प्रथम स्थान दिया गया है जबकि संस्कृत में उत्तम पुरुष को तीसरा स्थान दिया गया है।

(क) संस्कृत में पुरुष व्यवस्था–प्रथम पुरुष–सः तौ, ते
मध्यम पुरुष–त्वम्, युवाम्, यूयम्
उत्तम पुरुष–अहम्, आवाम्, वयम्

हिन्दी में पुरुष व्यवस्था–उत्तम पुरुष–मैं, हम
मध्यम पुरुष–तू, तुम, आप
अन्य पुरुष–वह, वे

हिन्दी वाक्य निर्माण में पुरुष व्याकरण कोटि का भी अपना एक स्थान है क्योंकि इसके बिना सही वाक्य रचना नहीं हो सकती। पुरुष अन्विति के कुछ उदाहरण देखिए–

(i) उत्तम पुरुष– मैं पुस्तक पढ़ रहा हूँ।
हम पुस्तकें पढ़ रहे हैं।

(ii) मध्यम पुरुष–तुम पुस्तक पढ़ रहे हो।
तू पुस्तक पढ़ रहा है।

(iii) अन्य पुरुष–वह पुस्तक पढ़ रहा है।
वे पुस्तकें पढ़ रहे हैं।

उपर्युक्त वाक्यों में उत्तम पुरुष के लिए 'मैं, हम', मध्यम पुरुष के लिए 'तुम, तू, आप तथा अन्य पुरुष के लिए 'वह, वे' के अनुसार अन्य पदों का प्रयोग हुआ है। अतः स्पष्ट है कि भाषा में वाक्य निर्माण के लिए पुरुष व्यवस्था का विशेष महत्त्व है।

(iv) काल व्यवस्था–समय की स्थिति को काल कहते हैं। सभी भाषाओं में काल के तीन भेद हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य। काल व्यवस्था से हमें कार्य की निष्पत्ति का ज्ञान होता है। चल रहे काल को वर्तमान काल कहते हैं, बीते काल को भूतकाल तथा आने वाले समय को भविष्यत् काल कहते हैं। भाषा व्यवस्था में काल व्यवस्था के बिना कार्य की निष्पत्ति के समय का ज्ञान नहीं हो सकता। विभिन्न कालों के कुछ उदाहरण देखिए–

(क) वर्तमान काल– लड़का स्कूल जाता है।
लड़के स्कूल जाते हैं।

(ख) भूतकाल– लड़का स्कूल गया।
लड़के स्कूल गए।

(ग) भविष्यत् काल– लड़का स्कूल जा रहा होगा।
मैं कल चण्डीगढ़ जाऊँगा।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक वाक्य में काल के अनुसार क्रिया में परिवर्तन हो जाता है। काल व्यवस्था विश्व की प्रत्येक भाषा में देखी जा सकती है।

इसी प्रकार हम अन्य व्याकरणिक कोटियों–कारक, वृत्ति, वाच्य तथा पक्ष आदि की विवेचना कर सकते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि काल के कारण क्रिया परिवर्तित हो जाती है। यह काल व्यवस्था संसार की सभी भाषाओं में देखी जा सकती है।

Scanned with ACE Scanner

(ख) भाषा-व्यवहार का विवेचन

भाषा व्यवस्था व्याकरण से सम्बन्धित होती है परन्तु भाषा व्यवहार भाषा के प्रयोग से सम्बन्धित है। भाषा व्यवहार के अन्तर्गत हम यह निर्णय करते हैं कि जो वाक्य व्याकरण की दृष्टि से सही नहीं है क्या वह लोक स्वीकृत है अथवा नहीं। यदि कोई वाक्य व्याकरण की दृष्टि से सही है तो वह लोक स्वीकृत भी होना चाहिए। इस सन्दर्भ में **डॉ. नरेश मिश्र** ने उचित ही लिखा है–**''भाषा व्यवहार का संबंध भाषा प्रयोग से होता है। इस विषय में हम यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि व्याकरण-सम्मत वाक्य लोक-स्वीकृत है या नहीं? वाक्य के व्याकरण-सम्मत होने के साथ उसका लोक-स्वीकृत होना अनिवार्य है। वास्तव में भाषा-व्यवस्था का सीधा संबंध भाषा की संरचना से है, तो भाषा-व्यवहार का संबंध भाषा के संरचनात्मक स्वरूप के औचित्य से है।''**

भाषा व्यवस्था के अनुसार विशेष्य के अनुसार विशेषण का प्रयोग होना चाहिए जैसे–लम्बा लड़का, लम्बी लड़की, गोरा लड़का, गोरी लड़की। भाषा व्यवस्था के अनुसार यहां लिंग, वचन व्याकरणिक कोटि के अनुसार है। भाषा व्यवहार की दृष्टि से यह उचित है। लेकिन यह कहना कि हरा लड़का, नीली लड़की व्याकरणिक कोटियों की दृष्टि से यह सही हो सकता है परन्तु यह लोक स्वीकृत नहीं है। **डॉ. नरेश मिश्र** ने भाषा की तीन स्थितियाँ बताई हैं–

1. भाषा व्यवस्था अनुरूप है, किन्तु लोक-सम्मत नहीं है।
2. भाषा व्यवस्था अनुरूप नहीं है, किन्तु लोक-सम्मत है।
3. भाषा व्यवस्था अनुरूप है और लोक-सम्मत है।

हम इस सन्दर्भ में यह अध्ययन किया जाता है कि कोई वाक्य भाषा व्याकरण की दृष्टि से कितना अनुकूल है और लोक व्यवहार किस सीमा तक मान्य और ग्राह्य है। भाषा व्यवहार की दृष्टि से भाषा प्रयोग को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. भावात्मकता–भाषा व्यवहार में विशेष भाव की अभिव्यक्ति के लिए नया रूप अपनाया जाता है। उदाहरण के लिए–उर्दू भाषा में 'गरीबखाना' व 'दौलतखाना' दो शब्दों का 'घर' के सन्दर्भ में प्रयोग होता है। वक्ता अपने घर के लिए 'गरीबखाना' शब्द का ही प्रयोग करता है परन्तु श्रोता के प्रति सम्मान-भाव दर्शाने के लिए उसके घर को 'दौलतखाना' कहता है, यथा–

(i) ज़हे नसीब! आप मेरे **गरीबखाने** आए। (अपने घर के लिए)

(ii) इधर से निकल रहा था, सोचा हुजूर के **दौलतखाने** में हाजिरी लगाता चलूं। (दूसरे के घर के लिए)

इसी प्रकार हिन्दी में 'खाना' व 'भोजन' दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। परन्तु जब श्रोता को विशेष महत्त्व दिया जाता है तो तब 'भोजन' शब्द का प्रयोग किया जाता है तथा सामान्य परिस्थितियों में 'खाना' शब्द का प्रयोग होता है। परन्तु दोनों ही शब्दों के साथ भिन्न-भिन्न क्रिया का प्रयोग होता हैं। यदि इन क्रियाओं को परस्पर बदल दिया जाए तो वाक्य लोक सम्मत न होगा, यथा–

(i) खाना खाओगे? (स्वीकार्य है क्योंकि यह वाक्य लोक-सम्मत है)

(ii) भोजन कीजिएगा? (स्वीकार्य है क्योंकि यह वाक्य लोक-सम्मत है)

(iii) भोजन खाओगे? (स्वीकार्य नहीं हैं क्योंकि यह वाक्य लोक-सम्मत नहीं है)

(iv) खाना कीजिएगा? (स्वीकार्य नहीं हैं क्योंकि यह वाक्य लोक-सम्मत नहीं है)

इस प्रकार गंगा के जल के लिए 'पानी' शब्द का प्रयोग करना अथवा नाली के पानी के जल अथवा 'वारि' शब्द का प्रयोग करना अनुचित है क्योंकि ऐसा वाक्य लोक-सम्मत नहीं होगा।

परन्तु यह भी द्रष्टव्य है कि कवि तथा अन्य साहित्यहार अपनी भावनाओं, कल्पनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रायः ऐसे वाक्यों का प्रयोग करते हैं, जो व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध प्रतीत होते हैं। परन्तु वे नए भावों, गंभीर विचारों को अभिव्यक्त करने में सक्षम होते हैं। उदाहरण के लिए–

(अ) कार्तिक की हँसमुख सुबह

(आ) मैं नीर भरी दुःख की बदली

(इ) क्षण बोले कण मुसकाए

यहां ध्यातव्य है कि न तो कोई सुबह 'हँसमुख' होती है, न कोई औरत 'नीर की बदली' हो सकती है। और न ही क्षण कण 'बोल या हँस' सकते हैं। परन्तु भावों की अतिशयता को प्रकट करने के लिए इन जड़ पदार्थों का मानवीकरण कर दिया जाता है। अतः 'हँसमुख' सुबह का अभिप्रायः हुआ–बहुत सुन्दर, खुशनुमा, प्रसन्नतादायक सुबह। इसी प्रकार 'नीर की बदली' का अर्थ हुआ–वियोग के कारण दिन-रात रोने वाली स्त्री।

Scanned with ACE Scanner

2. सामाजिक सन्दर्भ–अक्सर देखने में आया है कि व्याकरण की अपेक्षा समाज भाषा विज्ञान का व्यवस्था कुछ अलग प्रकार की होती है। किसी शब्द का प्रयोग समाज के किस संदर्भ में किया जा रहा है वह विशेष महत्त्व रखता है। व्याकरण की दृष्टि से कोई शब्द प्रयोग हो सकता है लेकिन समाज भाषा विज्ञान की दृष्टि से वह सही नहीं हो सकता। उदाहरण के रूप में तू, तुम, आप आदि शब्दों का प्रयोग सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर किया जाता है। जैसे–पिता का पुत्र से कथन–"तू अभी तक यहीं घूम रहा है दुकान पर नहीं गया।"

मित्र का मित्र से कथन–**"यार! तुमने तो सारा गुड़-गोबर कर दिया।"**

पुत्र का माता से कथन–**"माताजी! आप मेरे लिए भोजन बना दें।"**

उपर्युक्त उदाहरणों में 'तू' शब्द का प्रयोग अपने से छोटे के लिए किया गया है 'तुम' शब्द का प्रयोग अपने बराबर व्यक्ति के लिए किया गया है और 'आप' शब्द का प्रयोग अपने से बड़े व्यक्ति के लिए किया गया है। कुछ अन्य उदाहरण देखिए–**मालिक का नौकर से कथन–"तू मेरे घर से खाना लेकर आ।" (स्वीकार्य)**

नौकर का मालिक से कथन–**"तू घर चला जा। (अस्वीकार्य)**

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा प्रयोग में सामाजिक सम्बन्धों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रहती है।

3. भाषिक भंगिमा–भाषा प्रयोग में वक्ता की मानसिकता और सोच का विशेष महत्त्व रहता है। उसकी मानसिकता ही भाषा प्रयोग को दिशा प्रदान करती है। भाषा प्रयोग करने वाला व्यक्ति परिवेश, विषय, श्रोता आदि के सन्दर्भ में विशेष भंगिमा को अपनाता है। कुछ उदाहरण देखिए–

(i) यदि आपके चरण कमल हमारे यहाँ पड़ेंगे तो हमारा घर पावन हो जाएगा।

(ii) आज तो आप मेरी कुटिया को पवित्र कर दीजिए।

(iii) यह मेरा ही गरीबखाना है।

(iv) इस नाचीज बन्दे को राधेश्याम कहते हैं।

(v) यदि आप हमारे यहाँ पधारेंगे तो हमारा सौभाग्य होगा।

4. व्यंजना का आधार–जब कोई शब्द सामान्य अर्थ की अभिव्यक्ति न करके विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति करता है तो व्यंजनात्मक रूप हमारे सामने आता है। व्यंजना के प्रयोग से भाषा व्यवहार अत्यधिक प्रभावोत्पादक बन जाता है। व्यंजना के आधार पर वाक्यों में भिन्न-भिन्न पदों का प्रयोग किया जा सकता है। शब्द के जिस व्यापार से उसके मुख्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी अन्य विशेष अर्थ की प्रतीति होती है उसे व्यंजना अर्थ कहते हैं। व्यंजना से प्राप्त अर्थ को व्यंग्यार्थ या ध्वन्यार्थ कहते हैं। एक उदाहरण देखिए–'मजदूर का मालिक से कथन–"श्रीमान जी, अब तो दिन भी छिप गया है।" इसका लक्ष्यार्थ हो सकता है कि संध्या हो गई। लेकिन व्यंजना शब्द शक्ति द्वारा इससे अनेक अर्थ निकल सकते हैं। यथा–

(i) मेरा काम करने का समय खत्म हो गया है।

(ii) मुझे मजदूरी दीजिए ताकि मैं घर जाऊँ।

(iii) मुझे घर जाकर भोजन पकाना है।

(iv) मेरी आज की दिहाड़ी खत्म हो गई है।

5. मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग–मुहावरों और लोकोक्तियों से भाषा में अर्थ गाम्भीर्य उत्पन्न हो जाता है तथा भावाभिव्यक्ति प्रभावशाली बन जाती है। मुहावरे का स्वरूप कभी नहीं बदलता। यह हमेशा लोक सम्मत होता है।

(i) घी के दीये जलाना–(प्रसन्न होना)–जब श्रीराम लंका पर विजय प्राप्त करके अयोध्या लौटे तो अयोध्यावासियों ने घी के दीये जलाए।

(ii) आग बबूला होना–(क्रोधित होना)–जब नौकर ने चाय के बर्तन तोड़ दिए तो मालिक आग बबूला होने लगा।

(iii) आंख लगना–(नींद आना)–सीरियल देखते-देखते मेरी आंख लग गई।

(iv) आंख लगना–(बनावटी आंख लगाना)–राधा की एक आंख में पत्थर की आंख लगी हुई है।

(v) आंख लगना–(प्रेम होना)–मंजनू की लैला से आंख लग गई।

Scanned with ACE Scanner

6. शैली–भाषा व्यवहार में शैली का विशेष महत्त्व रहता है। हिन्दी भाषा में अनेक प्रकार की शैलियों का प्रयोग देखा जा सकता है। फलतः प्रत्येक साहित्यकार की अपनी ही शैली होती है। कुछ लेखक सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं और कुछ संस्कृतनिष्ठ भाषा का। भाषा व्यवहार में प्रायः वर्णनात्मक, अलंकृत, भावात्मक, विवेचनात्मक, संवादात्मक आदि विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग देखा जा सकता है। कुछ उदाहरण देखिए–

अलंकृत शैली–''सुस्वागतम्, हमारी कुटिया में आपके चरण कमल पड़े, हम तो धन्य हो गए।''

उर्दू शैली–''खुशामदीद! हुजूर, इस खाकसार के गरीबखाने पर खुद तशरीफ लाए।''

वर्णनात्मक शैली–''किन्तु उसकी शिक्षा-दीक्षा, सब किए-कराए पर एक दिन पानी फिर गया।''

संस्कृतनिष्ठ शैली–''वार्षिकोत्सव में अतिथियों का स्वागत कीजिए।''

इस प्रकार शैली के आधार पर भाषा के व्यवहार में विशेषता उत्पन्न हो जाती है।

7. भाषा संस्कार–आधुनिक समय में भाषा व्यवहार पर नगरीय जीवन, आँचलिक जीवन, पाश्चात्य जीवन शैली आदि का प्रभाव पड़ता जा रहा है। विशेषकर केबल टी. वी. संस्कृति ने तो अधिकांश युवक-युवतियों को पाश्चात्य जीवन-शैली का अंधानुकरण करने के लिए प्रेरित किया है। आज के युग में महानगरों के छात्र-छात्राओं, युवाओं की भाषा के शब्दों में आवश्यकता से अधिक प्रचलन बढ़ता जा रहा है। यथा–

(i) ''मम्मी, मुझे ऋचा की **मैरिज** जरूर **अटेण्ड** करनी है यू नो, वो मेरी **बेस्ट फ्रेंड** है।''

(ii) ''सर, मुझे अपना **अकाऊँट ओपन** करने के लिए **बैंक** जाना है।''

यहाँ पर यह द्रष्टव्य है कि युवक-युवतियाँ न तो पूर्ण रूप से अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हैं और न ही विशुद्ध रूप से भारतीय भाषा का। दक्षिणी भारत के राज्यों में तो धड़ल्ले से अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। हिन्दी व इंग्लिश के शब्दों की मिली-जुली भाषा के कारण कुछ लोग इसे **'हिंग्लिश'** कहने में नहीं चूकते।

इसके अतिरिक्त आँचलिक जीवन-शैली का भी भाषा-व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है। दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्र से महानगर में नौकरी की खोज में आया युवक अपनी आँचलिकता का त्याग नहीं कर पाता। इसीलिए महानगरों में हरियाणवी, भोजपुरी, अवधी आदि लोक-भाषाओं का व्यवहार होते देखा जा सकता है–यथा–

1. **'भैण जी,** आपको बस उधर तै मिलेगी।' (हरियाणवी)
2. 'हम अपने गांव **जात अही,** बाबू जी।' (अवधी)

◆◆◆

भाषा की संरचना

भाषा संरचना से आप कया समझते हैं? विस्तार से लिखिए।

अथवा

भाषा की भाषिक संरचना का उदाहरण सहित विवेचन कीजिए।

उत्तर–भाषा की संरचना–भाषा की संरचना का अर्थ है–भाषा की बनावट।

भाषा की संरचना से हमारा अभिप्राय उन तत्त्वों से है जिनके द्वारा भाषा का निर्माण होता है। जिस प्रकार एक भवन के निर्माण के लिए ईंट, लोहा, सीमेंट, औजार, मजदूर तथा कारीगर की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार भाषा की संरचना के लिए ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, अर्थ आदि की अपनी-अपनी भूमिका रहती है। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में जब हम पदार्थों का अध्ययन करते हैं तो हमें पता चलता है कि पदार्थों की संरचना तत्त्वों से होती है, तत्त्वों की परमाणुओं से, परमाणुओं की इलेक्ट्रोनों तथा न्यूट्रोनों से। वैज्ञानिक उपलब्धियों का आधार यही संरचनात्मक प्रक्रिया है। भाषा की संरचना का विवेचन बिंदुओं के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. ध्वनि संरचना
2. शब्द संरचना
3. पद संरचना
4. वाक्य संरचना
5. प्रोक्ति संरचना
6. अर्थ संरचना

Scanned with ACE Scanner

1. ध्वनि संरचना–भाषा की लघुत्तम इकाई **ध्वनि** मानी गई है। जब दो वस्तुएँ आपस में टकराती हैं तो उनमें कम्पन पैदा होता है। यही कम्पन श्रोता के कानों तक पहुंचता है इसे ध्वनि कहते हैं। भाषा विज्ञान में मानव के वागंगों से उत्पन्न ध्वनियों का ही अध्ययन किया जाता है। परन्तु ध्वनि भाषा की स्वतन्त्र, लघुत्तम, महत्त्वपूर्ण इकाई है। संसार की सभी भाषाओं की ध्वनियों में कुछ समानताएँ हैं तो कुछ विषमताएँ भी हैं। परन्तु प्रत्येक भाषा की ध्वनियों की कुछ विशेषताएँ होती हैं। हिन्दी में ध्वनियों का वर्गीकरण स्वर तथा व्यंजन के रूप में किया गया है।

(क) स्वर–स्वर हिन्दी भाषा की वे ध्वनियां हैं जिनके उच्चारण में किसी अन्य ध्वनि का सहयोग नहीं लिया जाता। इनके उच्चारण के समय मुख विवर में किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न नहीं होता। बल्कि स्वरों के उच्चारण के समय प्रश्वास वायु अबाध गति से मुख विवर से बाहर आती है। यही नहीं स्वरों का उच्चारण काफी देर तक किया जा सकता है। विभिन्न भाषाओं में स्वर ध्वनियों की संख्या अलग-अलग है। हिन्दी में इस समय ग्यारह स्वर ध्वनियाँ हैं।

–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ।

इसी प्रकार अंग्रेजी में स्वरों की संख्या पाँच है। अंग्रेजी के पांच स्वर हैं–a, e, i, o, u. संसार की विभिन्न भाषाओं में स्वर ध्वनियों की संख्या अलग-अलग है। यही नहीं, उनकी स्थान व्यवस्था में भी विभिन्नता देखी जा सकती है। कुछ भाषाओं में स्वर ध्वनियाँ आरम्भ में आती हैं, कुछ में बाद में और कुछ में व्यंजन ध्वनियों के मध्य आती हैं। उदाहरण के रूप में अंग्रेजी में स्वरों की व्यवस्था व्यंजन के मध्य में आती है।

(ख) व्यंजन–व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में स्वर ध्वनियों का सहयोग लिया जाता है। दूसरा व्यंजन के उच्चारण के समय श्वास वायु मुख विवर में किसी न किसी स्थान पर अवरुद्ध अवश्य होती है और वह घर्षण के साथ बाहर आती है। हिन्दी में व्यंजन ध्वनियों को स्वर के बाद स्थान दिया जाता है। परन्तु हिन्दी में य् और व् कुछ ऐसी व्यंजन ध्वनियां हैं जिनका प्रयोग स्वर के रूप में भी होता है। यही कारण है कि इन्हें अर्धस्वर भी कहा जाता है। हिंदी में महाप्राण ध्वनियों के लिए स्वतन्त्र चिह्न हैं। उदाहरण के रूप में प्रत्येक वर्ग का दूसरा और चौथा वर्ण महाप्राण होता है। इसके विपरीत पहला और तीसरा अल्पप्राण होता है। उदाहरण देखिए–

अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	महाप्राण
क	ख	ग	घ
च	छ	ज	झ
ट	ट	ड	ढ
त	थ	द	ध
प	फ	ब	भ

अंग्रेजी लिपि में जिस वर्ण के साथ स का प्रयोग होता है वह महाप्राण कहलाता है ख (KH), छ (CHH), ठ (TH), फ (PH), घ (GH), झ (JH), ढ (DH), ध (DH), भ (BH)

(ग) बलाघात–जब भाषा में विभिन्न ध्वनियों का एक साथ प्रयोग होता है तो उच्चारण में बल के प्रयोग से कुछ भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के रूप में आम शब्द में आ पर म की अपेक्षा अधिक बल दिया जाता है। बलाघात के प्रयोग से वक्ता का मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है, यथा–

(i) मुझे **एक** गणित की पुस्तक चाहिए।
(ii) मुझे एक **गणित** की पुस्तक चाहिए।
(iii) मुझे एक गणित की **पुस्तक** चाहिए।
(iv) **मुझे** एक गणित की पुस्तक चाहिए।

इन चारों वाक्यों में जो शब्द रेखांकित हैं, वक्ता उसी के अनुसार बलाघात का प्रयोग करता है।

(घ) सन्धि–कभी-कभी दो भाषिक इकाइयाँ मिलकर एक हो जाती हैं। जिससे ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। इसी को हम सन्धि कहते हैं। प्रत्येक भाषा के सन्धि नियम अलग-अलग हैं और उनकी अलग-अलग विशेषताएँ भी हैं। हिन्दी में सन्धि के फलस्वरूप हस्वीकरण, दीर्घीकरण, घोषीकरण, लोप तथा आगम हो जाता है।

Scanned with ACE Scanner

कुछ उदाहरण देखिए–

(1) **ह्रस्वीकरण**–हिंदी के तद्भव शब्दों में ह्रस्वीकरण की प्रक्रिया चलती है। जैसे–

अब + ही = अभी

आधा + खिला = अधखिला

भिख + आरी = भिखारी

(2) **दीर्घीकरण**

देव + इन्द्र = देवेन्द्र

रवि + इन्द्र = रवीन्द्र

मुख्य + अर्थ = मुख्यार्थ

(3) **घोषीकरण**

डाक + घर = डाकघर

(4) **लोप**

घौड़ा + दौड़ = घुड़दौड़

(5) **आगमन**

दीन + नाथ = दीनानाथ

मूसल + धार = मूसलाधार।

2. शब्द संरचना–शब्द भाषा की लघुत्तम स्वतंत्र तथा सार्थक इकाई कहलाती है। शब्द संरचना का अध्ययन उपसर्ग, प्रत्यय, समास तथा पुनरुक्ति आदि के आधार पर किया जाता है।

(i) उपसर्ग–उपसर्ग ऐसी भाषिक इकाई है जिसका प्रयोग शब्द में पहले होता है। इसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं हो सकता। परंतु यह शब्द संरचना का मुख्य आधार है। संस्कृत के अधिकांश उपसर्ग हिंदी में भी स्वीकार कर लिए गए हैं। उपसर्गों के आधार पर ही हिंदी में असंख्य नये शब्द बनाए गए हैं। यथा–

अ – न्याय > अन्याय

स – जीव > सजीव

कु – मार्ग > कुमार्ग

सु – कुमार > सुकुमार।

विदेशी भाषाओं के उपसर्ग – बे = बेकार, बे काम, बे = शक, बे सहारा।

(ii) प्रत्यय–प्रत्यय एक ऐसी भाषा इकाई है जो स्वतन्त्र रूप में प्रयुक्त न होकर शब्द के अंत में प्रयुक्त की जाती है। प्रत्यय भी दो प्रकार के हैं–हिंदी भाषा के प्रत्यय, विदेशी भाषा के प्रत्यय–सुन्दरता, दयालुता, कृपालुता, सफलता, असफलता आदि।

कार – कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, स्वर्णकार।

आनी – जेठानी, देवरानी, सेठानी, महारानी।

विदेशी भाषा के प्रत्यय–

दार–थानेदार, नम्बरदार, जमींदार।

दारी – वफादारी, तिमारदारी, ईमानदारी।

ई – डाक्टरी।

(iii) समास–जब दो शब्द जुड़ कर एक सामासिक शब्द का रूप धारण कर लेते हैं उसे हम समास कहते हैं। समास को समस्त पद अथवा सामासिक पद भी कहते हैं।

दाल-रोटी = दाल और रोटी।

राज-सैनिक = राजा का सैनिक।

समान प्रक्रिया में दो शब्दों के बीच में जो कारक चिह्न होता है वह लुप्त हो जाता है। जैसे–

राजा का मार्ग = राजमार्ग।

अर्थ के आधार पर सामासिक शब्दों के दो भाग हो सकते हैं।

Scanned with ACE Scanner

पहले भाग में वे सामासिक पद रखे जा सकते हैं जिनके अर्थ ज्यों के त्यों होते हैं। समास से पहले भी वही अर्थ है और समास के बाद भी वही अर्थ है। जैसे–

भाई और बहन = भाई-बहन

राम और लक्ष्मण = राम-लक्ष्मण।

दूसरे वर्ग में उन सामासिक शब्दों को रखा जा सकता है जिनके अर्थ में भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। जैसे–जल और वायु = जलवायु।

यहाँ सामासिक शब्द का अर्थ है वातावरण जो कि जल और वायु के अर्थ से भिन्न है।

शब्द संरचना में परिवर्तन–भाषा में एक प्रकार के शब्दों को दूसरे प्रकार के शब्दों में बदला जाता है परंतु बदलने की यह प्रक्रिया नियम के अनुसार होती है। जैसे संज्ञा से विशेषण बनाने में परिवर्तन किया जाता है।

दया > दयालु　　भिख > भिखारी

धर्म > धार्मिक　　समाज > सामाजिक।

इसी प्रकार शब्दों की व्याकरणिक संरचना बदलने पर भी इनके नियमों का ध्यान रखा जाता है। जैसे–

ई – नर = नारी

पुत्र = पुत्री

आ– सुत = सुता

बाल = बाला।

3. पद संरचना–जब कोई शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने योग्य हो जाता है तो उसे पद की संज्ञा दी जाती है अर्थात् वह शब्द व्याकरणिक क्षमता धारण कर लेता है। पद संरचना के अन्तर्गत हम शब्दों के विभिन्न प्रकार के व्याकरणिक रूपों का अध्ययन करते हैं।

(i) **संज्ञा के रूप में संरचना**–पुस्तक > पुस्तकें, पुस्तकों, लड़का > लड़कियाँ, लड़कियों।

(ii) सर्वनाम के साथ विभिन्न कारक चिन्ह लगाकर पद संरचना बनाई जाती है।

तुम – तुमने, तुमसे, तुमको, तुममें।

आप – आपने, आपको, आपसे, आपमें।

(iii) क्रिया पद की संरचना में भी प्रत्यय का महत्त्वपूर्ण योग रहता है।

खाना – खाओ, खाइए, खाओगी, खाओगे, खाऊँगा।

लिखना – लिखिए, लिखो, लिखूँगा, लिखोगी, लिखिएगा।

कभी-कभी संयुक्त क्रिया के प्रयोग के कारण भी क्रिया पद की विशेष संरचना हो जाती है। जैसे–

लिखना > लिख दो

मारना > मार दिया, मार डाला

खाना > खा लिया, खा लो, खा लिजिए

चलना > चल पड़ो, चलना पड़ेगा, चलते चलो।

4. वाक्य संरचना–वाक्य भाषा की स्वतंत्रपूर्व और सार्थक इकाई कही जाती है। वाक्य में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से एक क्रिया अवश्य रहती है। वाक्य संरचना में मुख्य रूप से दो भाग होते हैं– उद्देश्य और विधेय। जैसे–

राम लिख रहा है। इसमें 'राम' उद्देश्य है और **'लिख रहा है' विधेय है।** कभी-कभी वाक्य में उद्देश्य अप्रत्यक्ष रूप से छिपा रहता है जैसे–

चले जाओ (तुम चले जाओ)

पीजिए (आप पीजिए)

वाक्य की स्पष्ट संरचना का भावाभिव्यक्ति में भी विशेष महत्त्व रहता है। अनेक बार एक ही वाक्य से हमें दो प्रकार की भावाभिव्यक्ति प्राप्त होती है। जैसे–

रोको मत जाने दो।

रोको मत जाने दो।

Scanned with ACE Scanner

पहले वाक्य में न रोकने की भावाभिव्यक्ति की गई है। परंतु दूसरे वाक्य में रोकने की भावाभिव्यक्ति है। संरचना के आधार वाक्य के तीन भेद माने गये हैं। हम प्रायः एक वाक्य को दूसरे प्रकार के वाक्य में बदल सकते हैं।

जैसे– राम एक योग्य विद्यार्थी है।

राम एक योग्य विद्यार्थी नहीं है।

राम पुस्तक पढ़ रहा है–क्या राम पुस्तक पढ़ रहा है।

राम पढ़ रहा है। सोहन लिख रहा है।

राम पढ़ रहा है और सोहन लिख रहा है।

इसी प्रकार हम सरल वाक्य से संयुक्त बना सकते हैं और अनेक सरल वाक्यों से मिश्र वाक्य भी बना सकते हैं।

5. प्रोक्ति संरचना–भाषा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई तो प्रोक्ति है। ध्वनि यदि भाषा की लघुत्तम इकाई है तो प्रोक्ति यम तथा पूर्ण इकाई है जिससे हमें पूर्ण अर्थ की प्रतीति होती है। प्रोक्ति का एक उदाहरण देखिए–

- राम एक मेहनती लड़का है।
- राम बी.ए. का विद्यार्थी है।
- राम नियमित पढ़ाई करता है।
- राम हमेशा परीक्षा में प्रथम आता है।

यहां राम से सम्बन्धित चार वाक्य हैं। इन चारों में कोई आपसी सम्बन्ध नहीं है। अतः इससे पूर्ण तथा स्पष्ट अभिव्यक्ति हीं होती है। परंतु जब ये चारों वाक्य मिलकर प्रोक्ति का रूप धारण कर लेते हैं तो भावाभिव्यक्ति स्पष्ट हो जाती है। यथा–

''राम एक मेहनती लड़का है। नियमित परिश्रम करने के कारण वह हमेशा बी.ए. की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करता ।'' यह एक लघु प्रोक्ति है। प्रोक्ति के बारे में अलग-अलग परिभाषाएं दी गई हैं। **डॉ. नरेन्द्र मिश्र** के अनुसार–**''महावाक्य या क्ति के विभिन्न घटक रूपी वाक्य भिन्न-भिन्न अर्थ रखते हुए भी परस्पर मिलते हुए भी एक समग्रता बर्धक अर्थ की अभिव्यक्ति रते हैं।''**

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार–**''यह अजीब सी बात है कि अपनी परम्परा के इस पुराने शब्द महावाक्य को छोड़कर ज हमने इस अर्थ में एक नया शब्द प्रोक्ति बनाया है और स्वीकार किया है। ऐसा करके हमने अपनी परम्परा के प्रति बहुत ाय नहीं किया है।''**

डॉ. रामचन्द्र वर्मा के अनुसार–**''अर्थ की दृष्टि से परिपूर्ण वाक्यों की सुसम्बद्ध इकाई का नाम प्रोक्तिहै।''**

प्रोक्ति में निम्नलिखित तत्त्व होते हैं–

(क) एक से अधिक वाक्य

(ख) आन्तरिक सुसम्बद्धता

(ग) तत्त्व सरणी वक्ता श्रोता वक्तव्य संदर्भ शैली प्रकार

(घ) सम्प्रेषणीयता

(च) संरचना और सम्प्रेषणीयता में एकत्व।

6. अर्थ संरचना–ध्वनि शब्द पद और वाक्य भाषा की शारीरिक इकाइयां कहलाती हैं परंतु अर्थ भाषा की आत्मा कहलाता । अर्थ के बिना शब्द का कोई अस्तित्व नहीं है। इसलिए यह कहना उचित है कि अर्थ भाषा का आभ्यंतर रूप है। अर्थ को ायः सात वर्गों में बांटा जाता है–

(क) मुख्यार्थ–इसे वाच्यार्थ भी कहते हैं। जैसे–पुस्तक, घोड़ा, विद्यालय आदि।

(ख) लक्ष्यार्थ–मोहन तो निरा गधा है। (मूर्ख)

(ग) व्यंजनार्थ–यहां परम्परा से अर्थ जोड़ते हैं। जैसे–गंगा तो गंगा है। (पवित्रता का प्रतीक)

(घ) सामाजिक–जैसे अंग्रेजी में you के लिए तू, तुम, आप आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। छोटे के लिए तू–तू घर चला जा।

बराबर वाले को तुम–तुम खाना खा लो।

बड़ों के लिए आप का प्रयोग–आप चलिए मैं अभी आ रहा हूँ।

(ङ) बलात्मक–कृष्ण अब पुस्तक पढ़ेगा।

Scanned with ACE Scanner

वाग्यंत्र के विभिन्न वागवयवों एवं उनके कार्यों का परिचय दीजिए।

उत्तर–वाग्यंत्र–वाग्यंत्र शब्द दो शब्दों क्रमशः वाक् + यंत्र से मिलकर बना है। 'वाक' का अर्थ है–'वाणी' तथा 'यंत्र' का अर्थ है–'मशीन'। अर्थात् हमारे शरीर की वह मशीन जो वाणी उत्पन्न करने का कार्य करती है–वाग्यंत्र कहलाती है। वाणी की मशीन जैविक होने के कारण हमारे शरीर के विभिन्न अंगों का समूह है, जिसे हम वागवयव कहते हैं। हमारे शरीर के वाग्यंत्र रूपी मशीन के प्रमुख अवयव (अंग) निम्नलिखित हैं–

(क) फेफड़े (*Lungs*) तथा भोजन-नलिका (*Gullet*)
(ख) स्वरयंत्र (*Larynx*)
(ग) स्वरतंत्री (*Vocal Chord*)
(घ) स्वर-यंत्र मुख आवरण अथवा अभिकाकल (*Epiglottis*)
(ङ) अलजिह्वा (*Uvula*)
(च) नासिका विवर (*Nasal Cavity*)
(छ) मुख-विवर (*Mouth Cavatiy*)
(ज) तालु (*Palate*)
(झ) जिह्वा (*Tongue*)
(ञ) दाँत (*Teeth*)
(ट) ओष्ठ (*Lips*)

वागवयवों के कार्य अथवा ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया–जब हम श्वास लेते हैं तो शुद्ध वायु हमारे फेफड़ों में पहुँचती है और वह ऑक्सीजन से युक्त होती है। यह ऑक्सीजन शरीर में ऊर्जा को उत्पादन के लिए आवश्यक है। फेफड़े इस वायु को और भी शुद्ध करके अर्थात् छानकर रक्त में मिला देते हैं। हमारे रक्त में हिमोग्लोबिन नामक लौह-तत्त्व होता है जो इस ऑक्सीजन को अपने साथ मिलाकर शरीर के रोम-रोम तक पहुँचाता है। इस प्रकार हमारे शरीर के प्रत्येक अंग, भाग तक ऑक्सीजन पहुँचती है। प्रत्युत्तर में हमारा शरीर कार्बनडाइऑक्साइड का विसर्जन करता है। यह गैस, शेष वायु के साथ मिलकर प्रश्वास के रूप में हमारे शरीर से बाहर निकलती है।

इस प्रश्वास को बाहर भेजने का पहला कार्य फेफड़ों द्वारा किया जाता है। फेफड़ों से निकलकर प्रश्वास की वायु वायु-नलिका, श्वास-नलिका से होती हुई स्वर-यंत्र तक पहुँचती है। स्वर-यंत्र में स्थित स्वर तंत्री के संकुचन, फैलाव आदि के कारण इस प्रश्वास की वायु में कम्पन पैदा होता है। कम्पन सहित प्रश्वास की वायु अन्य अंगों; यथा–जिह्वा, दाँत, ओंठ आदि के स्पर्श, संघर्ष, बाधा के कारण पुनः परिवर्तित होती है। इस प्रकार कम्पन में आए इस परिवर्तन के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

Scanned with ACE Scanner

अतः यह स्पष्ट होता है कि फेफड़ों से लेकर नासिका सहित ओंठों तक के लगभग सभी अवयव ध्वनि उत्पादन में सहयोग देते हैं। इन वागवयवों को दर्शाने वाला चित्र निम्नलिखित है–

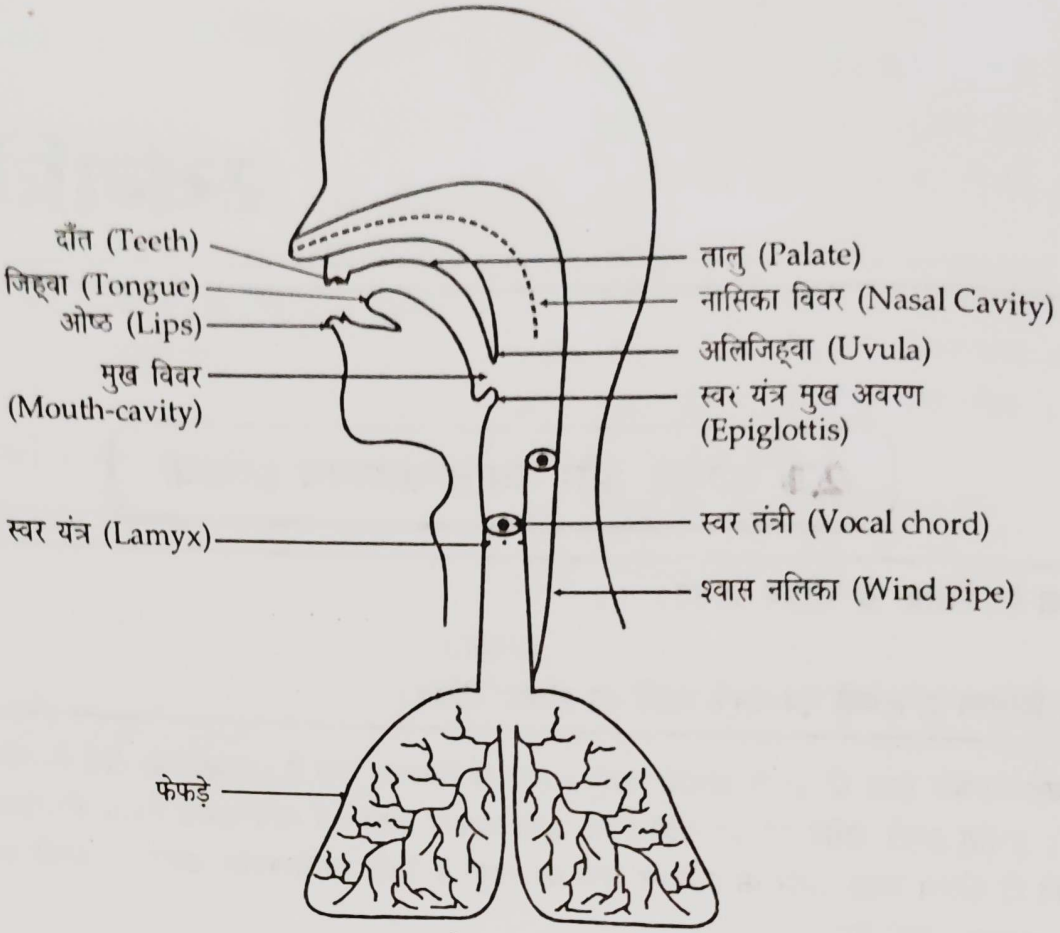

चित्र : वागवयव

वागवयवों के कार्य निम्नलिखित हैं–

(क) फेफड़े (Lungs) तथा श्वास-नलिका (Gullet)–जिस प्रश्वास से ध्वनि उत्पन्न होती है, उस प्रश्वास को बाहर की ओर धकेलने का कार्य फेफड़े करते हैं। मानव शरीर में दो फेफड़े होते हैं। जब ये दोनों संकुचित होते हैं तब प्रश्वास पर दबाव पड़ता है। वह फेफड़ों से निकलकर श्वास नली व मुख या नासिका के द्वारा बाहर निकल आती है। फेफड़ों द्वारा प्रश्वास पर इतना दबाव दिया जाता है कि वह स्वरतंत्रियों, मुखावयवों के साथ संघर्ष करने पर भी बाहर निकल जाती है। अतः निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि प्रश्वास द्वारा ध्वनि उत्पादन के कार्य में फेफड़े विशेष भूमिका निभाते हैं।

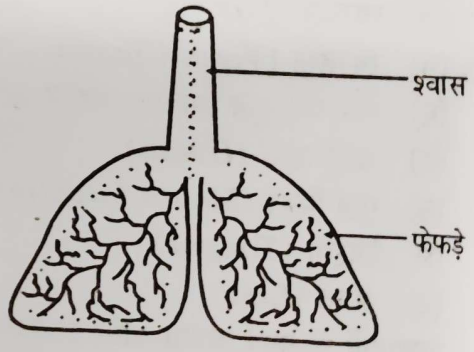

चित्र : फेफड़े

उदाहरण के लिए–यदि कोई वक्ता, गायक आदि बिना साँस लिए निरंतर बोलता रहे, तब धीरे-धीरे उसके फेफड़ों में एकत्र वायु समाप्त होने लगती है। अतः वायु के कम होने पर खाली हो चुके फेफड़ों का संकुचन भी अब सीमित हो जाता है। इसका परिणाम यह निकलता है कि वक्ता या गायक द्वारा उच्चरित ध्वनि भी धीमी होने लगती है। यदि कोई व्यक्ति बिना साँस लिए लगातार बोलता रहे तो वह स्वयं अनुभव कर सकता है कि अब फेफड़ों द्वारा दबाव न बनने के कारण ही वह ध्वनि का उच्चारण नहीं कर पा रहा है। अतः फेफड़े ध्वनि-उत्पादन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इसके अतिरिक्त श्वास लेते समय भी कतिपय सांकेतिक ध्वनियाँ भी उत्पन्न होती हैं। परंतु यह 'क्लिक' ध्वनि कहलाती है जब हम दोनों ओंठों को परस्पर मिलाकर श्वास लेते समय वायु को संघर्ष के साथ अन्दर खींचते हैं तब यह ध्वनि उत्पन्न होती है। माँ द्वारा अपने शिशु का चुम्बन लेते समय, पालतू कुत्ते को रोटी खिलाने के लिए पुचकार कर बुलाते समय, वक्ता की किसी का सकारात्मक उत्तर देते समय जब 'हाँ' या 'हूँ' नहीं कहते तब भी इसी प्रकार की 'पुच' सांकेतिक ध्वनि का उत्पादन करते हैं।

संक्षेप में भले ही फेफड़ों का मुख्य कार्य रक्त को शुद्ध ऑक्सीजन प्रदान करना है परन्तु ध्वनि उत्पादन के समय प्र... को बाहर निकालने के लिए जितने दबाव की आवश्यकता पड़ती है, वह केवल फेफड़ों द्वारा ही प्रदान किया जाता है।

Scanned with ACE Scanner

वस्तुतः फेफड़े श्वास-नलिका से जुड़े होते हैं। परंतु यह श्वास-नलिका भोजन-नलिका के साथ जुड़ी होती है। इन दोनों नलिकाओं के सिरों पर एक ढक्कन-सा लगा होता है। जब हम पानी पीते हैं या खाना खाते हैं, तब यह ढक्कन श्वास-नलिका को ढक लेता हैं परंतु जब हम साँस लेते हैं, तब यही ढक्कन भोजन-नलिका को ढक लेता है। फेफड़ों से निकलने वाली प्रश्वास की वायु श्वास-नलिका से निकलती है। अतः ध्वनि उत्पादन में श्वास-नलिका स्वयं तो सक्रिय नहीं होती परंतु यह श्वास को स्वरयंत्र तक पहुँचाने में अवश्य सहायता करती है।

(ख) स्वरयन्त्र (Larnyx)–जब प्रश्वास की वायु फेफड़ों से बाहर निकलती है तब वह श्वास-नलिका के मार्ग से होती हुई स्वरयन्त्र तक पहुँचती है। यह स्वर-यन्त्र श्वास-नलिका के ऊपरी छोर के पास स्थित होता है। यही कारण है कि इस स्थान पर आकर श्वास-नलिका कुछ मोटी हो जाती है। स्वर तन्त्र प्रायः दुर्बल या दुबले-पतले लोगों के गले में बाहर की ओर उठा हुआ दिखाई भी देता है। इसे साधारणतः टेंटुआ भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त इसे 'कठंपिटक' या ध्वनि यंत्र भी कहते हैं। इसका मुख्य कार्य इसमें स्थित स्वर-तन्त्री को सुरक्षा प्रदान करना है। इसीलिए यह अपेक्षाकृत कठोर होता है।

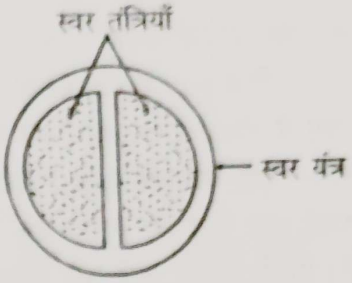

चित्र : स्वर-यंत्र

(ग) स्वरतन्त्री (Vocal Chord)–स्वर-यंत्र में दो परदे होते हैं जो लचीली झिल्लियों से बने होते हैं। इन्हीं लचीले परदों को स्वरतन्त्री कहते हैं। इन दोनों लचीले परदों के मध्य का भाग सामान्य स्थिति में खुला रहता है। इस खुले भाग को 'स्वर-मुख' या काकल **(Glottis)** कहते हैं। जब हम ध्वनि उत्पादन करते हैं तब स्वरतंत्रियों के लचीलेपन के कारण इनमें तनाव, फैलाव, संकुचन आदि होता है जिसके परिणामस्वरूप 'स्वरमुख' अर्थात् इन तन्त्रियों के बीच के खाली भाग की स्थिति में परिवर्तन होता है। अतः प्रश्वास की वायु कभी संकुचित स्वर-मुख से निकलती है तो कभी तने हुए स्वर-मुख से निकलती है। इस कारण प्रश्वास की वायु में विभिन्न प्रकार कम्पन्न होते हैं। इन विविध कम्पनों से ही विविध प्रकार की ध्वनियों का उत्पादन होता है। अतः स्वर-यंत्र में स्थित स्वर-मुख व स्वर-तंत्रियाँ ध्वनि उत्पादन में सबसे अधिक सहयोग देती हैं।

ध्वनि-उत्पादन में स्वर-तंत्रियों की स्थितियों को भी समझना आवश्यक है। जब हम साँस लेते हैं तब स्वरतंत्रियाँ अपनी सामान्य स्थिति में होती हैं। इस समय उनके बीच की दूरी सर्वाधिक होती है। अतः इस स्थिति में स्वर-मुख बहुत अधिक चौड़ा होता है। जब हम प्रश्वास छोड़ते हैं तब भी सामान्य स्थितियों; यथा–चुप रहने पर, अघोष ध्वनियों का उच्चारण करते समय, सोते समय भी स्वर-तंत्रियों व स्वरमुख की यही स्थिति रहती है।

परन्तु जब हम ध्वनि का उच्चारण करने का प्रयास करते हैं तब प्रश्वास के समय ये स्वरतंत्रियाँ एक-दूसरे के निकट आती हैं और स्वर-मुख उसी अनुपात में संकीर्ण होता जाता है। फलतः प्रश्वास की वायु को इन स्वरतंत्रियों के साथ संघर्ष करना पड़ता है। जब हम घोष ध्वनियों का उच्चारण करते हैं, उस समय स्वर-मुख अत्यधिक संकीर्ण व लम्बाई में छोटा हो जाता है। इसी प्रकार फुसफुसाहट करते समय गले की अन्य मांसपेशियों को नियन्त्रण में रखकर इन स्वर तंत्रियों में इतना तनाव ला दिया जाता है कि प्रश्वास की वायु में कम्पन ही नहीं होता। इस प्रकार केवल जपित या फुसफुसाहट भरे शब्द निकलते हैं। अत्यधिक दुर्बल रोगी, समूह में रहकर भी दूसरे व्यक्ति या स्त्री की चुगली करते समय इसी प्रकार धीमे-धीमे ध्वनि का उत्पादन करते हैं। चूँकि उन ध्वनियों में न्यूनतम कम्पन होता है, अतः वे कठिनाई से श्रोता के कानों तक ही पहुँच सकती हैं। स्वर तंत्रियों की विभिन्न स्थितियों को निम्न रेखाचित्रों द्वारा समझा जा सकता है–

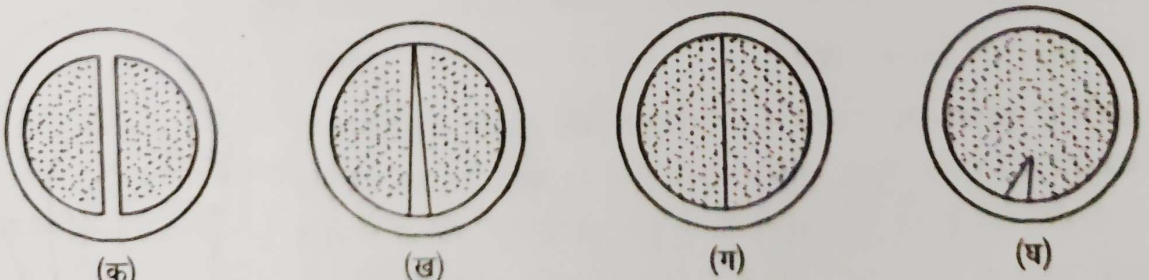

चित्र : स्वर-तंत्रियों की विभिन्न स्थितियाँ

उपर्युक्त चित्रों को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि ध्वनि का उच्चारण करते समय किस प्रकार स्वरतंत्रियाँ सिकुड़ती, फैलती हैं।

Scanned with ACE Scanner

चित्र (क) में दोनों स्वरतंत्रियाँ बिल्कुल अलग-अलग हैं तथा उनके मध्य में इतना स्थान है कि वायु बिना या कंपन के साथ बाहर निकल सके। साँस लेते समय स्वरतंत्रियों की यह स्थिति होती है।

चित्र (ख) में दोनों स्वरतंत्रियों के बीच की दूरी कम हो गई है क्योंकि अब इनमें तनाव उत्पन्न हो गया है। जब ध्वनियों का उच्चारण होता है, तब स्वरतंत्रियों की यही स्थिति होती है।

चित्र (ग) में स्वरतंत्रियाँ पूरी तरह तनावग्रस्त होकर एक-दूसरे से सट जाती हैं। इस स्थिति में प्रश्वास की वायु स्वल्प के साथ अधिक घर्षण करके बाहर निकलती है। ऐसी दशा में घोष ध्वनियों का उच्चारण होता है।

चित्र (घ) में स्वरतंत्रियों का केवल एक कोना खुला हुआ है तथा शेष स्थान पर वे परस्पर पूर्ण रूप से सटी हुई हैं। दशा में केवल फुसफुसाहट की ध्वनि बाहर निकलती है।

(घ) स्वर-यंत्र मुख आवरण अथवा अभिकाकल (Epiglottis)–यह अवयव स्वर-यंत्र के ऊपर स्थित होता है। हमारे मुख में इसके समीप एक प्रकार का चौराहा है। इसके एक ओर श्वास-नलिका होती है तो दूसरी ओर भोजन-नलिका है। इसके तीसरी ओर मुख विवर व चौथी ओर नासिका विवर होता है।

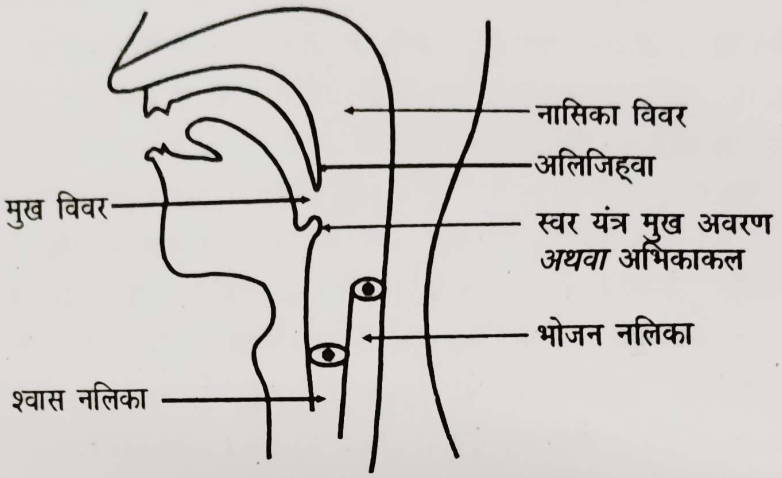

ध्वनि-उत्पादन में अभिकाकल सिमटकर प्रश्वास की वायु के बाहर निकलने का मार्ग देता है। अतः ध्वनि-उत्पादन में इस अधिक महत्त्व नहीं है। परन्तु जीवन-रक्षा की दृष्टि से इसका बड़ा महत्त्व है। जब हम भोजन निगलते हैं तब यह श्वास-नलि को ढक लेता है ताकि जल या भोजन का टुकड़ा श्वास नली में न जाने पाए। यदि श्वास नली में थोड़ा-सा भी जल या भोजन अंश चला जाता है तब हमारे फेफड़े पूरी शक्ति के साथ वायु को बाहर निकालते हैं जिसके साथ वह अंश श्वास नली से बा आ जाता है। यही कारण है कि हमें भोजन करते समय व पेय-पदार्थ पीते समय बात नहीं करनी चाहिए।

(ङ) अलिजिह्वा (Uvula)–मानव मुख में मुख-विवर, नासिका-विवर, श्वासनलिका व भोजननलिका के ठीक ऊपर के स्वरूप का मांस का एक छोटा-सा भाग लटकता रहता है। इसे छोटी जीभ, कौवा या अलिजिह्वा भी कहते हैं। जिस प्र अभिकाकल श्वास-नलिका व भोजन-नलिका को आवश्यकता के अनुरूप ढकता है, ठीक इसी प्रकार अलिजिह्वा मूल रूप मुख-विवर व नासिका विवर के मार्ग को अवरुद्ध करने का कार्य करता है। अपने लचीलेपन के कारण अपने आकार को घटा बढ़ाता रहता है। ध्वनि उत्पादन में अलिजिह्वा की विशेष भूमिका होती है।

इसकी सामान्यतः तीन स्थितियाँ होती हैं–

(अ) स्वाभाविक अवस्था–इस अवस्था में अलिजिह्वा नीचे लटकर मुख-विवर के मार्ग को बन्द कर देती है। फलतः केवल नासिका-विवर खुला रह जाता है। जब हम मुँह बन्द करके नाक से साँस लेते हैं तब अलिजिह्वा अपनी इसी स्वाभाविक अवस्था में होती है। जब हम किसी कथन के प्रति सहमति दर्शाने के लिए बिना मुँह खोले 'हूँ' कहते हैं या हुंकार भरते हैं तब अलिजिह्वा इसी अवस्था में होती है। इस अवस्था को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

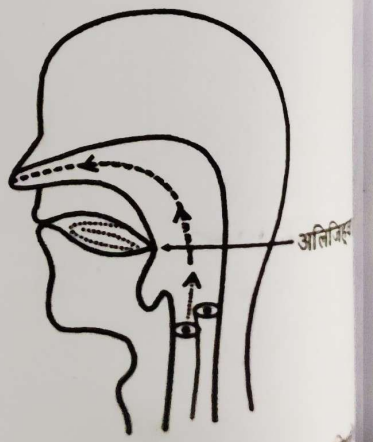

चित्र : अलिजिह्वा की सामान्य

Scanned with ACE Scanner

(आ) मध्यम अवस्था–इस अवस्था में अलिजिह्वा का आकार तनिक विस्तृत हो जाता है। वह मुख-विवर व नासिका विवर के मध्य इस प्रकार स्थित हो जाती है कि प्रश्वास की वायु बाहर निकलते समय नासिका-मार्ग व मुख-मार्ग दोनों से ही निकलती है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि इस मध्यम अवस्था में अलिजिह्वा न तो पूर्ण रूप से मुख-विवर को बन्द रखती है और न ही नासिका-विवर को। हिन्दी के अनुनासिक व्यंजनों की ध्वनि का उच्चारण करते समय अलिजिह्वा इसी स्थिति में होती है।

चित्र : अलिजिह्वा की मध्यम अवस्था

(इ) तृतीय अवस्था–इस अवस्था में अलिजिह्वा ऊपर की ओर उठकर नासिका विवर को पूर्ण रूप से बन्द कर देती है। फलतः स्वर-तन्त्र से निकलने वाली कम्पित वायु को बाहर निकलने के लिए मुख-विवर का मार्ग ही मिलता है। हिन्दी निरनुनासिक के स्वरों, व्यंजनों को उच्चारण करते समय अलिजिह्वा इसी स्थिति में होती है। अलिजिह्वा की इस स्थिति को निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है–

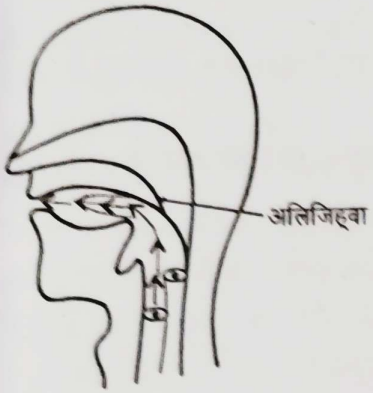

चित्र : अलिजिह्वा की तृतीय अवस्था

(च) नासिका विवर (Nasal Cavity)–बाहर से हमारी नासिका में श्वास लेने के लिए दो मार्ग दिखाई देते हैं। ये दोनों मार्ग आगे चलकर एक बन जाते हैं। श्वास-नलिका व भोजन-नलिका के ऊपर स्थित स्वर-यंत्र मुख-आवरण के ऊपर के भाग में एक ओर तो मुख-विवर होता है तो दूसरी ओर नासिका विवर होता है। इन दोनों के ठीक मध्य अलिजिह्वा होती है। जब अलिजिह्वा इन दोनों के मध्य इस प्रकार स्थित हो जाती है कि प्रश्वास की वायु मुख व नाक दोनों से बाहर निकले तब नासिका विवर ध्वनि-उत्पादन में योगदान देता है तथा नासिका ध्वनियों यथा–ङ्, ञ्, ण्, न्, म् आदि के साथ-साथ अनुनासिक ध्वनियों यथा–अँ, आँ, एँ, ओं आदि का उत्पादन करता है। इस स्थिति को अलिजिह्वा की मध्यम अवस्था वाले चित्र के द्वारा समझा जा सकता है।

(छ) तालु (Palate)–मुख-विवर का ऊपरी भाग तालु कहलाता है। इसके अन्दरूनी छोर पर अलिजिह्वा तथा पृष्ठभाग पर ऊपरी दाँत स्थित हैं। इन दोनों के मध्य का भाग तालु कहलाता है। इसे मुख्यतः चार भागों में बाँटा जा सकता है–

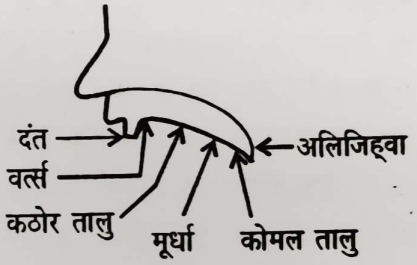

चित्र : तालु

(अ) वर्त्स (Alveola)–ऊपर के पृष्ठ-दाँतों के निकट के तालु-भाग के वर्त्स कहते हैं। जब जिह्वा इस भाग को स्पर्श करती है तब वह प्रश्वास की वायु को रोकने का प्रयास करती है। हिन्दी की 'न्', 'ल्' ध्वनियों का उच्चारण इसी स्थिति में होता है।

(आ) कठोर तालु (Hard Palate)–वर्त्स से थोड़ा आगे का भाग कठोर तालु कहलाता है। 'च्', 'छ्' आदि ध्वनियों का उच्चारण करते समय जिह्वा तालु के इसी भाग को स्पर्श करती है।

तालु के सभी भागों को निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है–

(इ) मूर्धा (Cerebrum) –कठोर तालु के आगे का भाग मूर्धा कहलाता है। 'ट्', 'ठ्', 'ड्', 'ढ्' आदि ध्वनियों का उच्चारण करते समय जिह्वा तालु के इसी भाग को स्पर्श करती है।

(ई) कोमल तालु (Soft Palate) –अलिजिह्वा से पहले व मूर्धा के आगे का भाग कोमल तालु कहलाता है। हिन्दी में 'क्', 'ख' आदि ध्वनियों का उच्चारण करते समय जीभ का पश्च भाग कोमल तालु को ही स्पर्श करता है।

(ज) जिह्वा (Tongue)–मुख विवर के ऊपरी भाग में तालु स्थित है तो निचले भाग में जिह्वा स्थित है। ध्वनि-उत्पादन में जिह्वा का सर्वाधिक महत्त्व है। सम्भवतः इसीलिए संस्कृत भाषा में जीभ को ही वाणी कहा गया है और अरबी भाषा में इसे 'ज़बान' व लैटिन भाषा में 'लिंग्वा' (*Lingua*) कहा गया है। सामान्य अवस्था में जिह्वा नीचे के दाँतों, जबड़ों के मध्य शिथिल रहती है। परन्तु जब हम ध्वनि का उच्चारण करते हैं तो जिह्वा क्रियाशील होकर प्रश्वास की कम्पित वायु को प्रभावित करती है।

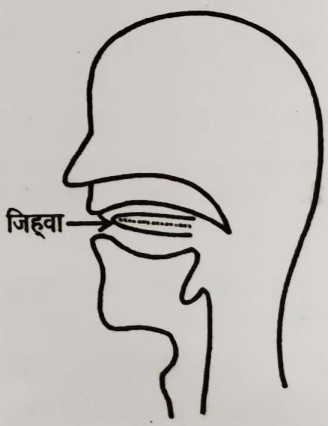

चित्र : जिह्वा

Scanned with ACE Scanner

ध्वनि-उच्चारण के आधार पर जिह्वा को मुख्यतः पाँच भागों में बाँट सकते हैं–

(अ) **जिह्वा मूल (Root of the Tongue)**–यह भाग अलिजिह्वा के नीचे स्थित होता है। 'क्', 'ख्', 'ग्' ध्वनि के उच्चारण में जिह्वा मूल ही सक्रिय होता है।

(आ) **जिह्वा पश्च (Back of the Tongue)**–जिह्वा मूल से थोड़ा आगे का भाग जिह्वा पश्च कहलाता है। 'ऊ' आदि ध्वनियों का उच्चारण करते समय जिह्वा का यह भाग सक्रिय होता है।

(इ) **जिह्वा मध्य (Middle of the Tongue)**–जिह्वा पश्च से थोड़ा आगे का भाग जिह्वा मध्य कहलाता 'अ', 'आ', 'च', 'छ' आदि ध्वनियों के उच्चारण के जिह्वा-मध्य ही सक्रिय रहती है।

(ई) **जिह्वा अग्र (Front of the Tongue)**–जिह्वा मध्य के आगे का भाग जिह्वा अग्र कहलाता है। 'ठ' आदि ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा अग्र ही सक्रिय रहती है।

(उ) **जिह्वा नोक (Tip of the Tongue)**–जिह्वा अगला नुकीला भाग जिह्वा नोक कहलाता है। 'त्', 'द्' आदि ध्वनियों के उच्चारण में चिह्वा-नोक ही सक्रिय होती है।

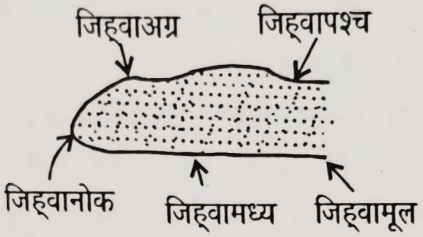

चित्र : जिह्वा-भाग

(झ) **दाँत**–यद्यपि दाँतों का मुख्य कार्य भोजन चबाना है परन्तु वे ध्वनि-उत्पादन में भी सहयोग देते हैं। दंतविहन वृ व्यक्ति के उच्चारण को सुनकर ध्वनि-उत्पादन व उस पर प्रभाव डालने में दाँतों के सहयोग को भली-भाँति समझा जा सकता है वस्तुतः दाँतों का ध्वनि-उत्पादन में दो प्रकार से प्रयोग होता है। एक ओर तो 'त', 'थ', 'द', 'ध', 'न', 'ल', 'स' आदि ध्वनि के उच्चारण में जिह्वा ऊपरी दाँतों को स्पर्श करती है। दूसरी ओर दाँत प्रश्वास की वायु को उतना ही मार्ग देते हैं जितना कि अपेक्षित है। उदाहरण के लिए दाँतों से युक्त व्यक्ति 'स' का ही शुद्ध उच्चारण कर सकता है जब दंतविहीन व्यक्ति जब 'स' क उच्चारण करता है तब उसके मुँह से सीटी-सी निकलती है क्योंकि प्रश्वास की वायु अनपेक्षित तथा मुक्त रूप से बाहर निकलती है

(ञ) **ओष्ठ**–मुख के बाह्य अवयवों में होंठों का प्रायः भोजन ग्रहण करने, मुख में आवश्यक तत्त्वों के प्रवेश पर रोक लगाने के रूप में प्रयोग होता है। परंतु ध्वनि उत्पादन में भी होंठों का विशेष योगदान रहता है। स्वरों 'व्' 'प्', 'फ' आदि ध्वनियों का उच्चारण होंठों की स्थिति से प्रभावित होता है। होंठों को दो वर्गों में बाँट सकते हैं–ऊपरी होंठ तथा नीचे के होंठ। वैसे तो ये दोनों होंठ ध्वनि उत्पादन ('ओ', 'औ', 'व', 'फ' के उच्चारण) में सक्रिय होते हैं परंतु यदि दोनों होंठों की तुलना की जाए तो नीचे वाला होंठ अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय होता है।

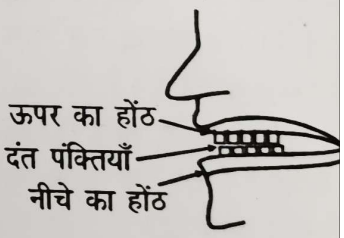

चित्र : दाँत व ओष्ठ

उपर्युक्त विवेचन के उपरांत यह कहा जा सकता है कि फेफड़ों से लेकर होंठों तक श्वसन प्रक्रिया के लगभग सभी अं ध्वनि-उत्पादनों में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। फेफड़े प्रश्वास की वायु पर दबाव डालकर उसे बाहर निकालते हैं तथा अन्य अवय या तो स्वतन्त्र रूप से या परस्पर सहयोग से उसे प्रभावित कर अनुकूल ध्वनि-उत्पादन करते हैं।

ध्वनि उत्पादन प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं? विस्तार से लिखिए।

अथवा

ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए उसकी विभिन्न शाखाओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–ध्वनि उत्पादन प्रक्रिया–आधुनिक भाषा वैज्ञानिक 'ध्वनि' के लिए 'स्वन' शब्द का प्रयोग करने लगे हैं। यदि ध्वनि भाषा की सूक्ष्मतम इकाई है तो स्वन को भी भाषा की सूक्ष्मतम इकाई कह सकते हैं। अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि स्वन उत्पादन की प्रक्रिया का विवेचन करना ध्वनि अथवा स्वन के बिना भाषा नहीं हो सकती। भाषा का ध्वन्यात्मक अध्ययन ही ध्वनि विज्ञान या

Scanned with ACE Scanner

स्वन विज्ञान कहा जा सकता है। भाषा के विभिन्न अंगों में स्वन अथवा ध्वनि का विशेष महत्त्व है। कारण यह है कि स्वन अथवा ध्वनि ही भाषा की मूल इकाई होती है। इसे हम ध्वनि विज्ञान या स्वन विज्ञान कह सकते हैं। ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत भाषा की सभी ध्वनियों की परीक्षा की जा सकती है। महर्षि पतंजलि ने इस संबंध में लिखा है–**''स्फोट शब्दा : ध्वनि शब्दगुणाः।''** उन्होंने इस कथन के द्वारा भाषा के दो रूपों पर प्रकाश डाला है। पहला तो उच्चारण है और दूसरा अर्थ है। स्फोट को वे भाषा की मूल इकाई मानते हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि 'स्फोट' ही न्यूनतम ध्वनि अथवा स्वन है। भले ही उच्चारण से पहले अर्थ वक्ता के मन में विद्यमान होता है, परंतु वागूयंत्र स्फोट होने के बाद ही श्रोता अर्थ को ग्रहण करता है। स्फोट का लघुत्तम रूप ही स्वन है। यही स्फोट भाषा की मूल इकाई है। स्वन के बारे में विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषाएं दी हैं। स्वन विज्ञान अथवा ध्वनि विज्ञान को अंग्रेजी में Phonetics अर्थात् Phonology भी कहा गया है। लेकिन ये दोनों शब्द समान अर्थ का द्योतक नहीं करते। Phonology शब्द किसी विशेष भाषा की ध्वनि व्यवस्था के लिए प्रयोग किया जाता है लेकिन Phonetics का संबंध ध्वनि विज्ञान के सैद्धांतिक पक्ष से है, जबकि Phonology का संबंध ध्वनि विज्ञान के व्यवहारिक पक्ष से है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने Phonetics के लिए ध्वनि विज्ञान अथवा ध्वनि शास्त्र शब्द का प्रयोग किया है। Phonology के लिए वे ध्वनि प्रक्रिया विज्ञान शब्दों का प्रयोग करते हैं। दूसरी ओर डॉ. देवी शंकर द्विवेदी Phonetics के लिए स्वनिकी और Phonology के लिए स्वनिमी शब्दों का प्रयोग करते हैं।

ध्वनि शब्द के मूल में 'ध्वन्' धातु है तथा इसके साथ (इण्) (इ) प्रत्यय लगा हुआ है। ध्वन् का अर्थ है शब्द करना अथवा आवाज करना। पहले बताया गया है कि आधुनिक विज्ञान में ध्वनि के लिए स्वन शब्द का प्रयोग होता है। ध्वनि ही भाषा की सूक्ष्मतम इकाई कही जा सकती है। जब हम किसी भाषा का ध्वन्यात्मक अध्ययन करते हैं तो उसे ध्वनि विज्ञान कहते हैं। भाषा के विभिन्न अंगों में ध्वनि विज्ञान का ही सर्वाधिक महत्त्व है। भाषा विज्ञान में स्वन के बाद स्वनिम, शब्द, पद, वाक्य और अर्थ आदि तत्त्वों का अध्ययन होता है। पहले बताया गया है कि इस स्वन को ही ध्वनि कहा गया है। यह भाषा का मुख्य आधार है। प्रत्येक भाषा में जो छोटी से छोटी ध्वनि सुनाई देती है, उसे स्वन अथवा ध्वनि कहते हैं। डॉ. **ओमप्रकाश भारद्वाज** ने 'स्वन' को स्पष्ट करते हुए लिखा है–**''सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो प्रत्येक भाषिक स्वन अपने आप में एक ऐसी विशिष्ट इकाई है जिसके अभिलक्षण उसके साथ के किसी दूसरे स्वन से नहीं मिलते।''** उदाहरण के रूप में 'क' और 'ख' स्थान और प्रयत्न के आधार पर एक ही जाति से संबंधित हैं क्योंकि ये दोनों स्वन स्पर्श, कण्ठ्य और अघोष ध्वनियाँ हैं। परंतु प्राणत्व के आधार पर 'क' अल्पप्राण है और 'ख' महाप्राण है। इस दृष्टि से ये दोनों स्वन भिन्न-भिन्न हैं। यदि, 'ख' और 'ग' को लिया जाए तो ये दोनों नाद स्तर पर भिन्न हैं, भले ही ये स्पर्श, कण्ठ्य और महाप्राण है। क्योंकि 'ख' अघोष है और 'घ' घोष है। अगला वर्ण 'ड.' नासिक्य है। चाहे स्वन हो, समस्वन या स्वनिक, इनके बारे में पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक सस्यूर ने गंभीर अध्ययन किया है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्वनि को ही स्वन कहा जाता है और वही भाषा की लघुत्तम इकाई है।

गूंगे अथवा बहरे जन्मजात जड़बुद्धि मनुष्यों को छोड़कर शेष सभी मानव वाक् अथवा वाणी द्वारा ही आपस में भावों का आदान-प्रदान करते हैं। इसी वाक् अथवा वाणी या भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इसकी कुल चार शाखाएं हैं। पहली शाखा स्वन विज्ञान है जिसे ध्वनि विज्ञान भी कहा गया है। ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया में वाक् इन्द्रियों की विशेष भूमिका रहती है। प्राचीन काल में लिपि प्रणाली का विकास नहीं हुआ था। उस समय ध्वनियों के उच्चारण और प्रत्यक्षीकरण पर विशेष बल दिया जाता था। वाक् स्वन शब्द का प्रयोग मुख से उत्पन्न होने वाली ध्वनि के लिए किया जाता है। मूलतः मुख से खाने-पीने का काम किया जाता है। कभी-कभी इससे सांस भी लिया जाता है परंतु इन दोनों कार्यों के साथ-साथ मुख से बोलने का कार्य भी होता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया में मुख की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मुख में स्थित जिह्वा, ओष्ठ्य, तालु आदि वागू अंगों का सहयोग पाकर ही ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया की तीन अवस्थाएँ हैं–

1. उत्पादन 2. संवहन 3. ग्रहण।

प्रकृति ने प्रत्येक प्राणी को ध्वनि को उत्पन्न करने और ग्रहण करने के दो साधन दिए हैं अर्थात् मुख द्वारा मानव ध्वनि उत्पन्न करते हैं और कान द्वारा ध्वनि को सुनते हैं। मानव मन में जो विचार अथवा भाव उत्पन्न होते हैं, उनको व्यक्त करने के लिए वह विशेष ध्वनियों का प्रयोग करता है लेकिन श्रोता और वक्ता के ध्वनि प्रतीक यदि समान होंगे तभी वे एक दूसरे के भावों या विचारों को ग्रहण कर सकेंगे और उनमें उचित ढंग सें विचारों का आदान-प्रदान हो सकेगा। डॉ. उदय नारायण तिवारी

Scanned with ACE Scanner

ने ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया पर समुचित चिंतन किया है। उन्होंने निम्नलिखित तालिका द्वारा ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया को स्प करने का प्रयास किया हैं। यह तालिका इस प्रकार है–

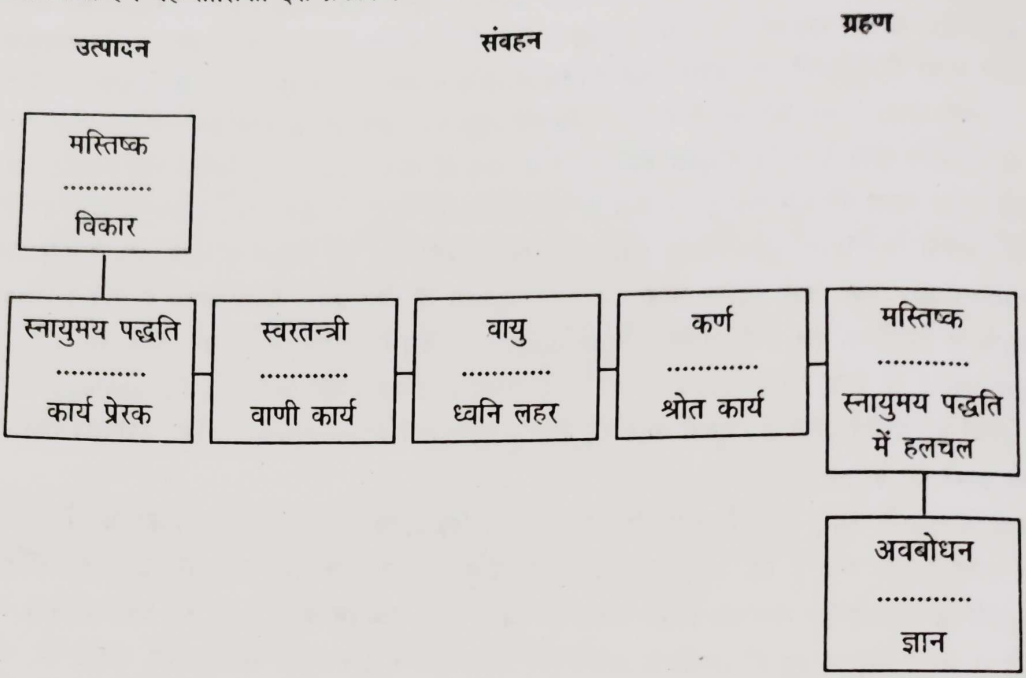

सर्वप्रथम वक्ता के मस्तिष्क में भाव अथवा विचार उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के रूप में यदि वह किसी व्यक्ति से कुछ मांगना चाहता है तो सबसे पहले उसके मस्तिष्क में उस वस्तु की इच्छा उत्पन्न होती है। यही इच्छा मानव की स्नायुमय पद्धति को कार्य करने की प्रेरणा देती है। इस अवस्था का संबंध ध्वनि उत्पादन से है। इसके बाद स्वर तत्रियाँ वाणी कार्य करती हैं। जिससे वक्ता मुख के वाक् प्रतीकों द्वारा ध्वनि को उच्चरित करता है। ये तीन अवस्थाएं हैं अर्थात् मस्तिष्क में विचार उत्पन्न होना, स्नायुमय पद्धति द्वारा कार्य की प्रेरणा देना और स्वर तंत्रियों द्वारा वाणी कार्य करना। चतुर्थ अवस्था का संबंध वायु अथवा लहर से है अर्थात् वक्ता के मुख से उच्चरित ध्वनियों को वायु संवहन करके श्रोता के कान तक पहुंचाने का काम करती है। प्रथम अवस्था को उत्पादन कह सकते हैं और दूसरी को संवहन कह सकते हैं। तीसरी अवस्था का नाम ग्रहण है। जब श्रोता कान से स्वनों को सुनता है तो उसकी स्नायुमय पद्धति द्वारा मस्तिष्क को अवबोधन होता है अर्थात् वक्ता ने उससे अमुक वस्तु मांगी है श्रोता से संबंधित भी तीन अवस्थाएं हैं अर्थात् पहले उसके कान सुनने का कार्य करते हैं। पुनः उसके स्नायु में हलचल होती है और तीसरी अवस्था से उसे अवबोधन होता है। एक अन्य विद्वान इस प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहता है कि प्रकृति ने हमें ध्वनि उत्पन्न करने के लिए मुख दिया है और ध्वनि को सुनने के लिए कान दिए हैं। जब हम मुख द्वारा ध्वनि को बाहर निकालते हैं। तब वह ध्वनि श्वास द्वारा ही बाहर निकलती है। पुनः वह ध्वनि वायु की सहायता से श्रोता के कानों तक पहुंचती है। श्वास फेफड़ों से बाहर निकलकर मुख के वाग् अंगों की बाधाओं से टकराते हुए ध्वनि का रूप धारण कर लेता है और इस प्रकार ध्वनि बाहर आती है। इस संबंध में ध्वनि विज्ञान की तीन शाखाओं की चर्चा की गई है। मानव मुख से सार्थक और निरर्थक दोनों प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न होने वाली सार्थक ध्वनियों का ही अध्ययन किया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया में वक्ता की महत्त्वपूर्ण भूमिका है लेकिन श्रोता की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। वक्ता, श्रोता के मध्य ही ध्वनियों का संवहन होता है। इसी को आधार बनाकर स्वन विज्ञान की तीन प्रमुख शाखाएँ मानी गई हैं–(i) औच्चारिकी (Articulatory Phonetics) (ii) संचारिकी (A coustics Phonetics) (iii) श्रौतिकी (Auditory Phonetics).

औच्चारिकी को औच्चारिक स्वन विज्ञान भी कहा गया है। इसी प्रकार संचारिकी को प्रसारणिक ध्वनि को विज्ञान कहते हैं और श्रौतिकी को श्रावणिक ध्वनि विज्ञान कहते हैं।

(क) औच्चारिकी ध्वनि विज्ञान (Articulatory Phonetics)–ध्वनि का उत्पादन करते समय मानव अपने संपूर्ण वाग् अंगों का प्रयोग करता है। वाग् अंगों को ही वाग् यंत्र कहते हैं। वाग् अंगों के कुछ अवयव ध्वनि का उच्चारण करते समय गतिशील हो जाते हैं। वे कभी ऊपर होते हैं कभी नीचे, कभी आगे अथवा कभी पीछे होते हैं। यही नहीं, वे फेफड़ों से निकलने

Scanned with ACE Scanner

वाले श्वास में बाधा भी उत्पन्न करते हैं। इन अवयवों में होंठ, जीभ का अग्र भाग तथा मध्य भाग आदि की विशेष भूमिका रहती है। यह हमेशा चलायमान स्थिति में रहते हैं। अतः इन्हें चल अवयव कहा जाता है। लेकिन मुख में कुछ ऐसे अवयव भी हैं जो अचल रहते हैं। परंतु ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया में ये भी अपना योगदान देते हैं। इन अवयवों में दांत तथा तालु के विभिन्न भाग हैं। ध्वनि के उच्चारण वाग् यंत्र को निम्नलिखित चित्र द्वारा समझा जा सकता है।

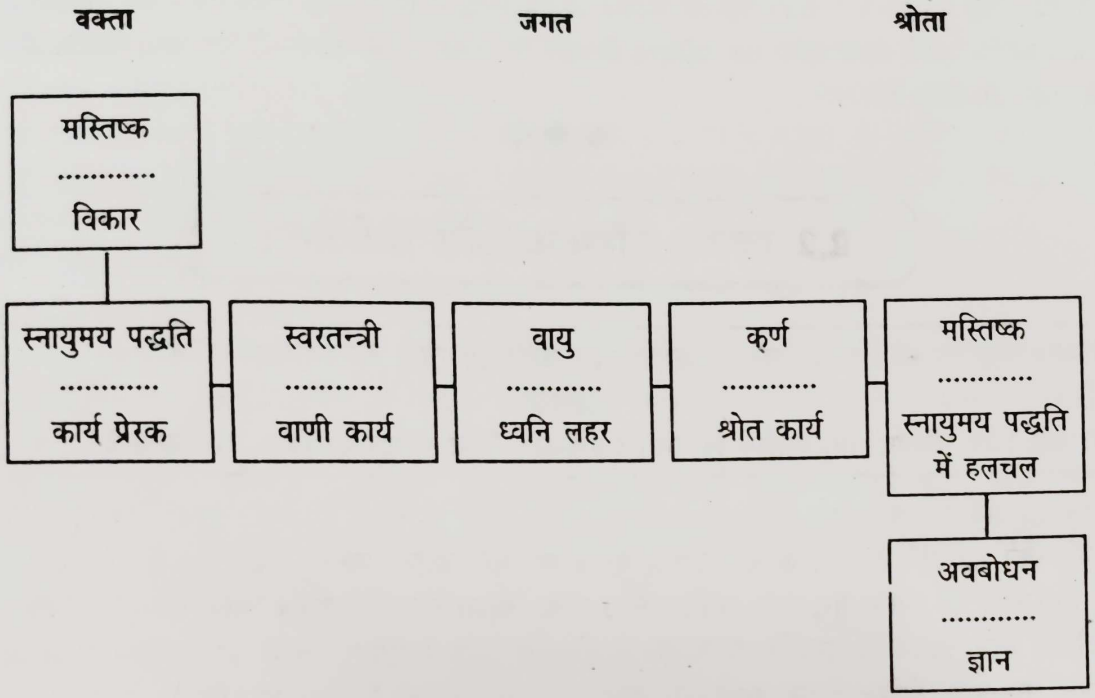

उच्चारण संबंधी ध्वनि विज्ञान में उच्चारण वाग् यंत्र के सभी अवयवों की क्रियाशीलता और उनके संकुचित होने की स्थिति आदि का अध्ययन होता है। मुख के सभी अवयवों को चार भागों में व्यक्त किया जा सकता है–

(i) श्वास-नलिका, भोजन नलिका और अभिकाकल।
(ii) स्वर-यंत्र, स्वर यंत्र-मुख और स्वर तंत्री।
(iii) मुख विवर, नासिक विवर और कौआ।
(iv) तालु, जिह्वा, ओष्ठ एवं दांत।

(ख) प्रसारणिक (संचारिणी) ध्वनि विज्ञान (A coustics Phonetics)–जब कोई वक्ता मुख से ध्वनि उत्पन्न करता है तब उसकी ध्वनि तरंगों के रूप में परिवर्तित होकर बाहर के वातावरण में फैल जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि ध्वनि के उत्पादन की प्रक्रिया में भौतिक शास्त्र का भी महत्त्व है। आजकल भौतिक विज्ञान में प्रसारणिक ध्वनि विज्ञान का गंभीर अध्ययन हो रहा है। प्रसारणिक ध्वनि विज्ञान के नियमों, परिणामों तथा सिद्धांतों के आधार पर ध्वनि संबंधी अनेक यंत्र राडार आदि अनेक उपकरण बनाए गए हैं। यद्यपि भाषा विज्ञान में ध्वनि विज्ञान की इस शाखा का अधिक महत्त्व नहीं है लेकिन इतना निश्चित है कि वक्ता के मुख से उच्चरित ध्वनि वायु द्वारा ही श्रोता के कान तक पहुंचती है। अतः श्रोता और वक्ता के बीच इस संवहन का विशेष महत्त्व माना जा सकता है।

(ग) श्रावणिक (श्रौतिकी) ध्वनि विज्ञान (Auditory Phonetics)–ध्वनि विज्ञान की इस शाखा का संबंध वक्ता द्व ारा उच्चरित ध्वनि को सुनने से है। विद्वान इस शाखा को भी भाषा विज्ञान की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। इसका उपयोग चिकित्सा शास्त्र में ही होता है। हमारे कान के तीन भाग हैं–बाह्य, मध्यवर्ती और अभ्यंतर। वक्ता की ध्वनि तरंगे, सर्वप्रथम बाह्य कर्ण की नलिका में प्रवेश करती हैं। तत्पश्चात् मध्य कर्ण से गुजरती हुई अभ्यंतर वर्ण की झिल्ली से टकराती हैं और उस झिल्ली में कंपन होता है। यह झिल्ली अनेक तंतुओं द्वारा मस्तिष्क से जुड़ी रहती है जिसके फलस्वरूप वक्ता द्वारा कहा गया संदेश श्रोता के मस्तिष्क तक पहुंचता है और वह ध्वनि को सुन पाता है। वस्तुतः श्रवण के आधार पर ध्वनि का अधिक स्पष्ट वर्गीकरण नहीं हो सकता। इसका वर्गीकरण वस्तुनिष्ठ तो कदापि नहीं हो सकता। वह केवल आत्मनिष्ठ हो सकता है। इस संपूर्ण प्रक्रिया को हम इस प्रकार समझ सकते हैं।–

Scanned with ACE Scanner

स्वन का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा बताइए कि उसका वर्गीकरण किस आधार पर किया जा सकता है?

उत्तर–स्वन का अर्थ एवं अवधारणा–'स्वन' शब्द को हिन्दी में ध्वनि भी कहते हैं। ध्वनि शब्द में 'ध्वन् धातु में 'इ' प्रत्यय लगने से बना है। ध्वन् का अर्थ है–शब्द करना, आवाज करना या ध्वनि उत्पन्न करना। ध्वनि का कोषगत अर्थ है–शब्द, नाद, ध्वनि, आवाज, वाद्य यंत्रों की ध्वनि, सुर, ताल, गर्जन आदि। भाषा विज्ञान में इसकी प्रमुख शाखा को ध्वनि विज्ञान अथवा स्वन विज्ञान भी कहते हैं। स्वन-विज्ञान के अन्तर्गत मानव मुख से उच्चरित ध्वनियों अथवा 'स्वनों' का अध्ययन किया जाता है। यूं तो ध्वनियां मेघ-गर्जन, सिंह-नाद, कोकिल-गूंजन, तबले-ढोल आदि से भी उत्पन्न होती हैं परन्तु स्वन विज्ञान में स्वन का अर्थ है–मानव मुख से उच्चरित वे ध्वनियां जिनसे व्यवस्थित रूप से भाषा की संरचना होती हैं। अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि भाषिक स्वन व्यवस्थित होकर सार्थक होते हैं। लेकिन मेघ गर्जना, कोकिल कूंजन अथवा वाद्य यंत्रों से उत्पन्न ध्वनियां निरर्थक होती हैं और उनका स्वन विज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस संदर्भ में **डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा** लिखते भी हैं–**''इन ध्वनियों में स्थूल भौतिक तथा सूक्ष्म मानसिक या वैचारिक स्त्रोतों का सामंजस्य होता है। ये वक्ता के मन अथवा बुद्धि से प्रेरित वागेन्द्रियों से उच्चरित ऐसी ध्वनियां हैं जो श्रोता द्वारा श्रवणों से ग्रहण की जाती हैं तथा मन अथवा बुद्धि द्वारा समझी जाती हैं। इस प्रकार ध्वनि की परिभाषा करते हुए हम कह सकते हैं कि ध्वनि वक्ता की मानसिक प्रेरणा से वागेन्द्रिय द्वारा उच्चरित वह सूक्ष्मतम सार्थक वाचिक घटक है जो श्रोता-श्रवणों द्वारा श्रव्य और बुद्धि द्वारा ग्राह्य होने के कारण वैचारिक आदान-प्रदान के माध्यम के रूप में भाषा की संरचना का प्राथमिक आधार है।''**

स्वन अथवा ध्वनि भाषा की सूक्ष्मतम इकाई है। स्वन से सम्बन्धित विज्ञान को स्वन विज्ञान, स्वनिमि, ध्वनि विज्ञान, ध्वनि शास्त्र आदि नाम भी दिए गए हैं। अंग्रेजी में इसे **(Phonetics)** और **(Phonology)** कहते हैं। इन दोनों शब्दों का सम्बन्ध ग्रीक के (Phone) से है, जिसका अर्थ है ध्वनि। टिक्स और लॉजी विज्ञान के ही पर्यायवाची शब्द माने जा सकते हैं। भाषा विज्ञान में मानव मुख से उत्पन्न ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। ध्वनि के तीन पक्ष हैं–उत्पादन, संवहन और ग्रहण। वक्ता ध्वनि का उत्पादन करता है। वायुमण्डल ध्वनि को संवहन करती है और श्रोता उसे ग्रहण करता है। ध्वनि के आभास के लिए वक्ता और श्रोता जितने आवश्यक हैं, उतना ही दोनों के बीच संवहन भी आवश्यक है। मानव मुख के अंगों से ध्वनि उत्पन्न करता है और कानों से सुनता है। लेकिन संवहन ध्वनि तरंगों के माध्यम से होता है। ये ध्वनि तरंगें वक्ता के वागंगों से चलकर श्रोता के कानों तक पहुंचती हैं और श्रोता को ध्वनि का अनुभव होता है।

स्वन की परिभाषा–प्रत्येक भाषिक स्वन अपने आप में एक विरोष इकाई मानी गई है। स्वन विशेष के अभिलक्षण दूसरे स्वन के अभिलक्षणों से नहीं मिलते। उदाहरण के रूप में 'क' और 'ख' स्थान और प्रयत्न के आधार पर एक ही वर्ग के स्वन हैं। ये दोनों कण्ठ्य और स्पर्श ध्वनियां हैं। परन्तु प्राणत्व के आधार पर 'क' अल्प प्राण ध्वनि है और 'ख' महाप्राण ध्वनि है। अतः इस स्तर पर दोनों अलग-अलग हैं। विद्वानों ने भी स्वन की अलग-अलग परिभाषाएं दी हैं–

डॉ. रत्नचन्द्र शर्मा के अनुसार–**''मानव जब बोलता है तो उसके मुख-विवर से वायु निकलती है जो वगेन्द्रिय द्वारा कुछ वाणी (आवाज) प्रकट करती है, जिसे ध्वनि (स्वन) कहा जाता है।''**

Scanned with ACE Scanner

डॉ. हरीशचन्द्र वर्मा के अनुसार–**''ध्वनि वक्ता की मानसिक प्रेरणा से वागेन्द्रिय द्वारा उच्चरित वह सूक्ष्मतम वाचक घटक है जो श्रोता के श्रवणों द्वारा श्रव्य और बुद्धि द्वारा ग्राह्य होने के कारण वैचारिक आदान-प्रदान के माध्यम के रूप में भाषा की संरचना का प्राथमिक आधार है।''**

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार–**''भाषा ध्वनि वह ध्वनि है जिसे मनुष्य अपने मुंह में नियत स्थान से निश्चित प्रयत्न द्वारा किसी ध्येय को स्पष्ट करने के लिए उच्चरित करे और श्रोता जिसे उसी अर्थ में ग्रहण करे।''**

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्वन अथवा ध्वनि मानव मुख के अवयवों से उत्पन्न होती है। इसका सम्बन्ध उत्पादन, संवहन और श्रवण से है। भाषा विज्ञान में ध्वनि अथवा स्वन का अध्ययन करने वाली शाखा ही स्वन विज्ञान कहलाती है। स्वन विज्ञान के अन्तर्गत स्वनों की उत्पत्ति, वाग् अंगों पर उसके प्रभाव, संवहन, श्रवण, स्वनों का वर्गीकरण, स्वन गुण, स्वन परिवर्तन आदि का अध्ययन करते हैं।

स्वनों का वर्गीकरण–पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि स्वनों के उच्चारण में वागंगों का विशेष महत्त्व होता है। जितने भी वागंग स्वनों का उच्चारण करने में सहायक होते हैं उन्हें सामूहिक रूप से वागंग कहा जाता है। ये वागंग ही भाषिक स्वनों के आधार हैं। पाणिनी ने शिक्षा में स्वनों के पांच अंग माने हैं–

तेषा विभागः पंचधा स्मृतः।

स्वरतः कालतः स्थानात्- प्रयत्नानुप्रदानतः।

पाणिनी के अनुसार स्वनों का वर्गीकरण पांच प्रकार से हो सकता है–स्वर, काल, स्थान, प्रयत्न तथा अनुप्रदान। डॉ. देवेन्द्र नाथ शर्मा का कहना है कि प्रयत्न का अर्थ है अभ्यन्तर प्रयत्न और अनुप्रदान का अर्थ है–बाह्य प्रयत्न। इधर लघु सिद्धांत को हिंदी में लिखा है–**'प्रयत्नो द्विधा, आभ्यत्तरो बाह्यश्च'**

स्वर और काल ये दोनों ध्वनियों के वर्गीकरण का आधार नहीं है बल्कि ध्वनि गुण हैं। अतः इनकी चर्चा स्वन गुणों के अर्न्तगत की गई है। विद्वानों ने स्वन वर्गीकरण के तीन आधार माने हैं–स्थान, प्रयत्न तथा कर्ण परंतु अधिकांश विद्वान कर्ण अर्थात् इन्द्रियों को स्थान में ही समाहित कर लेते हैं।

स्वनों का वर्गीकरण

स्थान	प्रयत्न		करण
	अभ्यन्तर	**बाह्य**	1. अधरोष्ठ
काकल (काकल्य)	1. स्पृष्ट	1. विवार	2. जिह्वा
कण्ठ (कण्ठ्य)	2. इषत्स्पृष्ट	2. संवार	3. कोमल तालु
तालु (तालव्य)	3. विवृत	3. श्वास	4. स्वरतंत्री
मूर्धा-मूर्द्धन्य	4. ईषत्विवृत	4. नाद	
वर्त्स-वर्त्स्य	5. संवृत	5. घोष	
दांत-दन्तव्य		6. अघोष	
ओष्ठ-ओष्ठ्य		7. अल्पप्राण	
जिह्वामूल-जिह्वामूलीय		8. महाप्राण	
		9. उदात्त	
		10. अनुदात्त	
		11. स्वरित	

(क) स्थान के आधार पर स्वनों का वर्गीकरण–ध्वनि उत्पादन में स्थान की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी गई है। ध्वनि उत्पादन के अचल अंग को स्थान कहा जाता है। ध्वनि का उत्पादन करते समय निश्वास-वायु जहां कहीं बाधित होती है उसे स्थान कहते हैं। फेफड़ों से जो श्वास-वायु श्वास नलिका में से होकर हमारे मुख विवर के माध्यम से आगे बढ़ती है, उस मार्ग में कहीं न कहीं रुकावट होती है। मुख विवर में अंदर के अंगों को स्थान कहते हैं। श्वास लेते समय वायु को ओष्ठ से स्वर यंत्र तक के विभिन्न स्थानों से गुजरना पड़ता है। इन स्थानों का विवरण इस प्रकार है–

Scanned with ACE Scanner

1. काकल (Glottis)–इसे स्वर यंत्र मुख भी कहते हैं। यह स्वर का ऊपरी भाग है जो दो झिल्लियों से बनता है। स्व यंत्र जब खुला होता है तो श्वास वायु बंद कण्ठ द्वार को झटके से खोलकर बाहर निकलती है। ऐसी ध्वनि को हम काकल ध्वनि कहते हैं।

2. कण्ठ (Pharynx)–इसे कण्ठ मार्ग भी कहा गया है। जब प्रश्वास वायु कण्ठ तक आकर कुछ पलों के लिए बाधित हो जाती है और जिह्वा पिछले कोमल तालु को छूने के बाद वायु बाहर निकलती है तो उसे कण्ठ्य ध्वनि कहते हैं।

3. तालु (Palate)–मुख विवर के ऊपर के भाग अर्थात् छत को तालु कहा जाता है। जब निःश्वास वायु तालु पर आकार अवरुद्ध होती है और जिह्वा का अगला भाग कठोर तालु का स्पर्श करता है उस समय जो ध्वनि निकलती है उसे तालव्य ध्वनि कहते हैं।

4. मूर्धा (Cerebrum)–तालु का सबसे ऊंचा स्थान मूर्धा कहलाता है। जब निश्वास वायु मूर्धा तक आकार अवरुद्ध हो जाती है और जिह्वा की नोक मूर्धा का स्पर्श करती है। उस समय जो वायु बाहर निकलती है। उसे मूर्धन्य कहते हैं।

5. वर्त्स (Alveola)–संस्कृत में इसे वर्त्स कहते हैं। दंत पंक्तियों के ऊपर के भाग को वर्त्स कहते हैं। जब निःश्वास वायु वर्त्स पर अवरुद्ध होती है तो जिह्वा नोक वर्त्स का स्पर्श करती है तब जो वायु बाहर निकलती है उसे वर्त्स्य ध्वनि कहते हैं।

6. दंत (Teeth)–निश्वास वायु जब दांत पर आकर बाधित होती है और जिह्वा नोक ऊपर की दंत पंक्ति का स्पर्श करती है। उस समय जो वायु बाहर निकलती है उसे दंतव्य ध्वनि कहते हैं।

7. ओष्ठ (Lip)–जब मुख ध्वनि के उच्चारण में ओष्ठ सहयोगी होता है उसे हम ओष्ठ्य ध्वनि कहते हैं। वस्तुतः ओष्ठ की दोहरी भूमिका रहती है। कभी तो ओष्ठ दांत का स्पर्श करके ध्वनि का उत्पादन करते हैं और कभी दोनों ओंठ आपस में छूकर ध्वनि का उत्पादन करते हैं। इस प्रकार ओष्ठ ध्वनि दो प्रकार की हो सकती हैं–

(i) द्वयोष्ठ्य–जब दोनों ओष्ठ एक-दूसरे का स्पर्श करते हैं और निःश्वास वायु क्षण भर अवरुद्ध होकर बाहर निकलती है तो उसे द्वयोष्ठ्य ध्वनि कहते हैं।

(ii) दन्तयोष्ठ्य–जब निःश्वास वायु ओष्ठ तक पहुंच कर अवरुद्ध होती है और नीचे का ओष्ठ ऊपर की दंत पंक्ति का स्पर्श करता है उस समय जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसे दन्तयोष्ठ्य ध्वनि कहते हैं।

(ख) प्रयत्न के आधार पर स्वनों का वर्गीकरण–ध्वनि उत्पादन के समय निःश्वास वायु मुख विवर के विभिन्न स्थानों पर अवरुद्ध होती है। निःश्वास वायु के रुकावट या विकार में जो प्रक्रिया होती है उसे हम प्रयत्न कहते हैं। फेफड़ों से निकली हुई निःश्वास वायु मुख विवर अथवा मुख विवर के पहले कहीं भी अवरुद्ध होकर ध्वनि उत्पादन में सहयोग देती हैं। इस आधार पर प्रयत्न के **अभ्यन्तर** और **बाह्य** दो भेद हो सकते हैं।

1. अभ्यन्तर–ध्वनि उत्पादन के समय जो मुख विवर में जो प्रयत्न किए जाते हैं उन्हें अभ्यन्तर प्रयत्न कहते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं। परंतु लघु सिद्धांत में इनकी संख्या पांच मानी गई हैं जो इस प्रकार हैं–

(i) स्पृष्ट–स्पृष्ट का अर्थ है स्पर्श किया गया। हिंदी की कवर्ग, चवर्ग, खवर्ग, तवर्ग और यवर्ग की कुल 25 ध्वनियां हैं। ये सभी स्पृष्ट ध्वनियां हैं क्योंकि इनके उच्चारण में कोई न कोई भाग एक-दूसरे से स्पर्श करता है।

(ii) ईषत्स्पृष्ट–इसका अर्थ है थोड़ा-सा स्पर्श किया गया। इन ध्वनियों के उच्चारण के समय जिह्वा वागंगों को थोड़ा-सा स्पर्श करती है। हिंदी की य, र, ल, व (अन्तस्थ) ध्वनियां ईषत्स्पृष्ट ध्वनियां हैं। ये ध्वनियां स्वर और व्यंजन के मध्य की स्थिति में हैं। इसलिए इन्हें अर्धस्वर भी कहते हैं।

(iii) विवृत–इसका अर्थ है खुला हुआ। जिस स्वन के उच्चारण के समय मुख विवर खुला रहता है। उसे हम विवृत ध्वनियां कहते हैं। सभी स्वन ध्वनियों का उच्चारण इसी प्रक्रिया से होता है। इसमें श्वास वायु किसी भी अंग का स्पर्श नहीं करती और अबाध गति से बाहर आती है। अतः सभी स्वर विवृत हैं।

(iv) ईषत्विवृत–इसका अर्थ है थोड़ा खुला हुआ। जिस स्वर के उच्चारण में मुख विवर विवृत की अपेक्षा कम खुलता है उसे ईषत्विवृत कहा जाता है परंतु कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने ईषत्विवृत की चर्चा नहीं की :

(v) संवृत–इसका अर्थ है बंद। यह विवृत के सर्वथा विपरीत प्रयत्न है। बंद का मतलब यह नहीं है कि मुख विवर पूर्णतया बंद होता है। परंतु जब मुख विवर अपेक्षाकृत बहुत कम खुला रहता है तब संवृत ध्वनियां उत्पन्न होती है। 'इ', 'उ' दोनों संवृत ध्वनियां हैं।

Scanned with ACE Scanner

2. बाह्य प्रयत्न–बाह्य प्रयत्नों का सम्बन्ध स्वर तंत्रियों से है अर्थात् ध्वनि उत्पादन में जब प्रयत्न मुख विवर के बाहर अलिजिह्वा के द्वारा होता है तो उसे हम बाह्य प्रयत्न कहते हैं। लघु सिद्धांत कौमुदी में कहा भी गया है।

''बाह्य प्रयत्नस्त्वेकादशधाः। विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषो अल्प्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति।''

लघु सिद्धांत कौमुदी के अनुसार बाह्य प्रयत्न के ग्यारह भेद हैं–विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरिता।

(i) विवार–विवार शब्द का अर्थ होता है–खुला हुआ। जिन ध्वनियों के उच्चारण में स्वर-यंत्र में स्थित स्वर तंत्रियां पूरी तरह से खुली रहती हैं, तब उन ध्वनियों को विवार ध्वनियां कहते हैं। उदाहरण के लिए–क्, च्, ट्, त्, प् आदि।

(ii) संवार–संवार शब्द विवार शब्द का विपरीतार्थक है और इसका शाब्दिक अर्थ है बंद। जिन ध्वनियों का उच्चारण करते समय स्वर तंत्रियां लगभग बंद हो जाती हैं। तब उन ध्वनियों को संवार ध्वनियां कहते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी में 'ग्', 'ज्', 'द्' आदि संवार ध्वनियां हैं।

(iii) श्वास–यहां पर श्वास शब्द का तात्पर्य श्वास प्रश्वास की निर्बाध क्रिया से है। अतः जिन ध्वनियों का उच्चारण करते समय श्वास-प्रश्वास की क्रिया निर्बाध रूप से चलती रहती है, उन ध्वनियों को श्वास ध्वनियां कहते हैं। उदाहरण के लिए–'छ्', 'फ' आदि श्वास ध्वनियां हैं।

(iv) नाद–'नाद' का अर्थ होता है–आवाज या शोर अर्थात्-जिन ध्वनियों के उच्चारण के स्वर तंत्रियों में कम्पन होता है, उन ध्वनियों को नाद ध्वनियां कहते हैं। उदाहरण के लिए–'म', 'ण' आदि नाद ध्वनियां हैं।

(v) अघोष–जिन ध्वनियों का उच्चारण करते समय तंत्रियां एक-दूसरे से दूर रहती हैं तथा प्रश्वास की स्वर वायु बिना घर्षण किए बाहर निकल जाती हैं, उन ध्वनियों को अघोष ध्वनियां कहते हैं। हिंदी व्यंजनों के पांच वर्गों की पहला व दूसरा व्यंजन अघोष ध्वनि की श्रेणी में आता है। जैसे–क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ् आदि अघोष ध्वनियां हैं।

(vi) घोष–जिन ध्वनियों का उच्चारण करते समय तंत्रियां परस्पर निकट होती हैं तथा उनके मध्य से निकलते समय जब प्रश्वास की वायु उनमें कम्पन पैदा करती है तब उन ध्वनियों को घोष ध्वनि कहा जाता है। हिंदी के प्रत्येक वर्ग की तीसरी, चौथी, पांचवीं, ध्वनि अर्थात् ग्, घ्, ङ्, ज्, झ्, ञ् आदि घोष ध्वनियां हैं।

(vii) अल्पप्राण–यहां पर 'प्राण' का तात्पर्य प्रश्वास की वायु से है। अर्थात् जिन ध्वनियों का उच्चारण करते समय अल्प अथवा थोड़ी मात्रा में वायु बाहर निकलती है, उसे अल्प प्राण ध्वनियां कहते हैं। हिन्दी भाषा की वर्णमाला व्यंजनों में पांचों वर्गों की पहली, तीसरी व पांचवीं ध्वनियां यथा–क्, ग्, ङ्, च्, ज्, ञ्, ट्, ड्, ण् आदि अल्पप्राण ध्वनियां हैं।

(viii) महाप्राण–'महा' का शाब्दिक अर्थ होता है–महान अथवा बड़ा। यहां पर अधिक से तात्पर्य है जिन ध्वनियों के उच्चारण में प्रश्वास की वायु अधिक मात्रा में बाहर निकलती है, उन ध्वनियों को महाप्राण ध्वनि कहते हैं। हिंदी वर्णमाला के व्यजंनों, में पहले पांच वर्गों की दूसरी व चौथी ध्वनि महाप्राण ध्वनि कहलाती है। उदाहरण के लिए–ख, घ, छ, झ, ठ, ढ आदि महाप्राण ध्वनियां हैं।

(ix) उदात्त–उदात्त का अर्थ है ऊपर की ओर उठा हुआ अर्थात् आरोही। इसलिए इन्हें आरोही ध्वनियों भी कहते हैं। इन ध्वनियों के उच्चारण के समय पहले निःश्वास वायु कम दवाब से निकलती है फिर धीरे-धीरे उसमें वृद्धि होती चली जाती है जिससे ध्वनि का उच्चारण अधिक तीव्र और स्पष्ट हो जाता है। ई, ऊ, ऐ उदात्त ध्वनियां हैं।

(x) अनुदात्त–यह उदात्त के सर्वथा विपरीत स्थित है। इसका अर्थ है नीचे की ओर। इन ध्वनियों के उच्चारण में प्रयत्न नीचे की ओर रहता है। अतः इन्हें अवरोही ध्वनियां भी कहते हैं। इ, उ दोनों ही अनुदात्त ध्वनियां हैं।

(xi) स्वरित–इसका अर्थ है सम्भावी। अर्थात् इसमें आरोह और अवरोह के बिना प्रयत्न होता है। ये न तो उदात्त ध्वनियां होती हैं न ही अनुदात्त 'अ' स्वरित ध्वनि कहलाता है।

(ग) करण के आधार पर स्वनों का वर्गीकरण–ध्वनि उत्पादन के उन अंगों को करण कहते हैं जो गतिशील रहकर ध्वनि का उत्पादन करते हैं। ये अवयव ध्वनि उच्चारण में साधन के रूप में प्रयुक्त होते हैं। विभिन्न अवयवों की गतिशीलता के आधार पर अलग-अलग ध्वनियां उत्पन्न होती हैं। करण के आधार पर ध्वनियों का इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है–

1. अधरोष्ठ–जब ऊपर का ओष्ठ लगभग स्थिर रहता है तो उसमें हल्की-सी गतिशीलता होती है परंतु नीचे के होंठ विविध ध्वनियों के उत्पादन में अनेक रूप धारण कर लेता है। नीचे का ओष्ठ कभी ऊपर के ओष्ठ का स्पर्श करता है तो कभी ऊपर के दांत का। प, फ, ब, भ, म तथा व ये सभी अधरोष्ठीय ध्वनियां हैं।

Scanned with ACE Scanner

शब्द रचना के कौन-कौन से प्रकार हैं? विस्तार पूर्वक विवेचन कीजिए।

उत्तर–शब्द : अर्थ एवं अवधारणा–शब्द का शब्दिक अर्थ है–ध्वनि, आवाज, नाद।

सभी पारिभाषिक कोशों में किसी न किसी रूप में यह अर्थ देखा जा सकता है परंतु व्याकरण, दर्शन, विज्ञान, काव्य तथा कोष्ठ में अर्थ संबंधी भिन्नता देखी जा सकती है। संस्कृत व्याकरण में शब्द को ब्रह्म कहा गया है। वैदिक साहित्य में ऐसा ही शब्दार्थ अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। जहां कहीं दार्शनिक भावाभिव्यक्ति की जाती है वहाँ ब्रह्म से संबंधित अर्थ ही प्राप्त होता है।

व्युत्पत्ति–शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में भी विद्वान एकमत नहीं हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने शब्द के बारे में लिखा है–**"शब्द का सम्बन्ध शब्द धातु से है–जिसका अर्थ है शब्द करना अर्थात् आवाज करना।"** डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया और डॉ. रामचंद्र वर्मा ने इसी व्युत्पत्ति को स्वीकार किया है। डॉ. नरेश मिश्र ने विद्वानों के मतों को दो वर्गों में विभक्त किया है।

- कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने शब्द को शप् धातु से जोड़ा है और उसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है–शप् (आक्रोशे) + दन = शब्द।
- भाषा वैज्ञानिकों का दूसरा वर्ग शब्द का संबंध संस्कृत धातु शब्द से जोड़ता है। अर्थात् शब्द + घञ् प्रत्यय = शब्द। साथ ही डॉ. नरेश मिश्र ने दूसरे वर्ग की व्युत्पत्ति को स्वीकार किया है क्योंकि शब्द का मूल अर्थ है। ध्वनि।

शब्द की परिभाषा–

शब्द के बारे में कोई पूर्ण वैज्ञानिक परिभाषा देना लगभग असंभव है। संस्कृत के विद्वानों ने तो शब्द के बारे में कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी लेकिन पाश्चात्य तथा हिंदी के आधुनिक विद्वानों ने शब्द के बारे में अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं–

(क) संस्कृत आचार्यों द्वारा दी गई शब्द की परिभाषा–

- संस्कृत के विद्वानों में महर्षि पतंजलि ने शब्द को स्फोट कहा है। वे लिखते हैं।–**स्फोट शब्दः! ध्वनि शब्द गुण।** एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं।–

'श्रोतोपलब्धि बुद्धि निर्ग्राज्ञ प्रयोगेणाभिज्वलितः आकाशदेशः शब्दः' अर्थात् कान से प्राप्त, बुद्धि से ग्राहय, प्रयोग से स्फूर्त होने वाली आकाशव्यापी ध्वनि को शब्द कहते हैं।

शब्द, कल्पद्रुम के आधार पर शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी गई है–**"श्रोतग्राह्य गुणपदार्थविशेषः।"**

Scanned with ACE Scanner

इन परिभाषाओं में ध्वनि के आधार पर प्राप्त होने वाली अर्थ प्रतीति को महत्त्व दिया गया है परंतु संस्कृत के विद्वानों की ये परिभाषाएँ अधिक वैज्ञानिक नहीं कहीं जा सकतीं।

(ख) हिन्दी वैयाकरणों द्वारा दी गई शब्द की परिभाषा–

- हिंदी के वैयाकरणों तथा भाषाविदों के अनुसार शब्द की कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

पंडित कामताप्रसाद गुरु के अनुसार–**''एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं।''**

डॉ. रामचंद्र वर्मा के अनुसार–**''अक्षरों, वर्णों आदि से बना और मुँह से उच्चरित या लिखा जाने वाला वह संकेत जो हिंदी कार्य या भाव का बोधक हो।''**

आचार्य श्यामसुंदर दास के शब्दों में–**''वह स्वतंत्र व्यक्त और सार्थक ध्वनि जो एक या अधिक वर्णों के संयोग से कंठ और तालु आदि के द्वारा उत्पन्न हो और जिससे सुनने वाले को किसी पदार्थ, कार्य या भाव आदि का बोध हो, उसे शब्द कहते हैं।''**

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी है–**''उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुत्तम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से शब्द।''**

डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल के अनुसार–**''ध्वनियों का संयोजन शब्द ..... है।''**

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार–**''भाषा की सार्थक, लघुत्तम और स्वतंत्र इकाई को शब्द कहते हैं।''**

(ग) पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की गई शब्द की परिभाषा–

पाश्चात्य विद्वानों ने भी शब्द की निम्नलिखित परिभाषाएं दी हैं–

पामर के अनुसार–"The Smallest speech unit capable of functioning as a complete ulterance" अर्थात् भाषा की ऐसी लघुत्तम इकाई जो एक महत्त्वपूर्ण उच्चारण के रूप में काम कर सके उसे शब्द कहते हैं।

उल्मैन की परिभाषा–"The smallest significant unit of language." शब्द को भाषा की लघुतत्तम महत्त्वपूर्ण इकाई कहते हैं।

मैलेट ने शब्द के विषय में इस प्रकार कहा है–

"A word is the result of the association of a given meaning with a given combination of sound capable of given grammatical use."

अर्थात् शब्द अर्थ और ध्वनि का वह योग है, जिसका व्याकरणिक प्रयोग किया जाता है।

शब्द रचना के प्रकार–शब्द रचना के प्रकारों का उल्लेख करने के पूर्व शब्द रचना का अर्थ जानना आवश्यक है। किसी भी भाषा में मूल शब्दों की संख्या बहुत कम होती है। इन मूल शब्दों से भाषाई अभिव्यक्ति संभव नहीं हो पाती, अतः प्रत्येक भाषा में मूल शब्दों के साथ कुछ अन्य शब्द अथवा शब्दांश जोड़कर नए शब्द बनाए जाते हैं। मूल शब्द में अन्य शब्द अथवा शब्दांश जोड़कर नए शब्द बनाने की प्रक्रिया को ही 'शब्द रचना' कहा जाता है। हिन्दी भाषा में शब्द रचना के तीन प्रमुख आधार हैं–

(क) उपसर्ग के आधार पर। (ख) प्रत्यय के आधार पर। (ग) समास के आधार पर।

(क) उपसर्ग के आधार पर

उपसर्ग भाषा के कुछ सार्थक और लघुत्तम खण्ड हैं जिनका स्वतंत्र रूप से प्रयोग तो नहीं होता, परंतु ये शब्द के आगे जुड़कर नए शब्दों का निर्माण करने में समर्थ हैं। उदाहरण के रूप में संस्कृत में प्र, परा, रुप, समू आदि कुल 24 उपसर्ग हैं। शब्द के आरंभ में जुड़कर ये असंख्य नए शब्दों का निर्माण कर सकते हैं। हिंदी में तीन प्रकार के उपसर्ग प्रचलित हैं–

1. संस्कृत के उपसर्ग 2. हिंदी के उपसर्ग 3. विदेशज के उपसर्ग।

1. संस्कृत के उपसर्ग–इनको तत्सम् उपसर्ग भी कहा जाता है। पहले ये उपसर्ग संस्कृत भाषा में प्रयुक्त होते थे, अब हिंदी में ज्यों के त्यों प्रयुक्त हो रहे हैं। इन उपसर्गों के जुड़ने से हिंदी में असंख्य नवीन शब्दों का निर्माण हुआ है।

Scanned with ACE Scanner

नीचे कुछ उदाहरण दीखए–

उपसर्ग	अर्थ	उदाहरण
अ	प्रतिकूल, रहित, हीन, अभाव, निषेध	अभाव, अन्याय, अधर्म, अज्ञान, अखाद्य, अप्राप्य, अनीति, अचल, अजर
अधि	अधिक, श्रेष्ठ	अधिपति, अधिनायक, अधिशासी, अध्यक्ष, अधिग्रहण, अधिपाठक
अनु	प्रतिकूल, अभाव	अनंत, अनर्थ, अनाचार, अनावरण, अनुचित, अनिच्छा।
अप	बुरा, अनुचित, विपरीत	अपकार, अपशकुन, अपयश, अपहरण, अपमान, अपव्यय, अपशब्द, अपवाद, अपकीर्ति, अपहर्त्ता
आ	तक	आगमन, आदान, आकर्षण, आरंभ, आकाश आजन्म, आहार, आगमन, आघात, आकृति, आमुख
कु	बुरा	कुमार्ग, कुपुत्र, कुकर्म, कुचाल, कुरूप, कुमंत्रणा, कुदृष्टि, कुतर्क, कुपोषण।
दुर्, दुः	बुरा, कठिन, अभाव	दुराचारी, दुःशासन, दुर्जन, दुर्बल, दुर्मति, दुर्गम
वि	विना, विशेष, विलोम आधिक्य	विभाग, विकराल, विदेश, विज्ञान, वियोग, विलोम, विमर्ष, विक्रय, विशुद्ध, विकार, विभिन्न, विहीन, विचित्र, विद्रोह।
प्र	आगे, ऊपर, अधिकता, आरंभ	प्रहार, प्रबल, प्रशिक्षण, प्रयोग, प्रदूषण, प्रवीण, प्रयास, प्रताप, प्रमाण, प्रमोद, प्रधान, प्रचलन, प्रयत्न, प्रकार, प्रलय।
स	सहित	सहर्ष, सजल, सपरिवार, सपूत, सहित, सजीव, सक्रिय
सु	अच्छा, सहज, अधिक, शुभ, सुंदर	सुपुत्र, सुयश, स्वागत, सुशिक्षा, सुकर्म, सुशिक्षित, सुगंध, सुदर्शन, सुबोध, सुपथ, सुकन्या, सुशील, सुलोचन।
अंतः	भीतर, सभी, बाहर	अन्तर्राष्ट्रीय, अन्तर्ज्ञान, अन्तर्गत, अन्तर्देशीय, अन्तर्दृष्टि,
अन्तर		अंतःसाक्ष्य, अन्तर्दशा।
आवि	बाहर	आविष्कार, आविर्भाव, आविर्भूत।
उत्,	ऊपर, श्रेष्ठ, मुक्त, प्रकट, उत्सव, उद्देश्य, उत्कण्ठा,	उद्दण्ड, उत्तम, उत्कर्ष, उत्थान, उत्साह, उन्नति, उत्सर्ग, उत्प्रेक्षा, उत्सुक, उद्वेग।
निर्,	निषेध, निरीह	निर्भय, निर्दय, निर्मल, निर्वासन, निर्वाह, निराकरण, निर्धन, निर्जीव, निर्यात, निर्गुण, निर्देश, निर्वसन।

इन उपसर्गों के अतिरिक्त संस्कृत के कुछ अन्य उपसर्ग भी हैं जिनसे हिंदी में शब्दों का निर्माण हो रहा है।

अधः (अधोपतन), अंतर्मन, अंतर्दृष्टि, अनु (अनुसार, अनुचित), अभि (अभिलाषा, अभिमान), अलम् (अलंकृत), उप (उपसर्ग, उपमंत्री), नि (निवारण, निषेध), चिर् (चिरकाल, चिरस्थायी), पर (परतंत्र), परा (पराभव), परि (परिक्रमा), पुरा (पुरातत्त्व) पुनर्/पुरस (पुनरावृत्ति, पुनर्विवाह), प्रादुर (प्रादुर्भाव), प्रति (प्रत्येक, प्रतिकूल), बहिस्/बहिर् (बहिष्कार), सत् (सत्कर्ष), सम् (समकालीन), सह (सहभागी, सहयोग), स्व (स्वतंत्र, स्वराज्य) आदि।

2. हिंदी के उपसर्ग–हिंदी के भी अनेक उपसर्ग हैं जिनसे शब्दों का निर्माण हुआ है। यथा–अ, अध, अन्, उप, औ/अव, क/कु, चौ, दु, नि, पर्, बिन, भर, स/सु। इनमें से कुछ के उदाहरण दिए जा रहे हैं।

Scanned with ACE Scanner

उपसर्ग	अर्थ	उदाहरण
अ	अभाव	अलग, अजान, अछूत, अमोल, अचेत।
अन्	प्रतिकूल, परे	अनपढ़, अनमोल, अनहित, अनजान, अनुरूपी, अनशन, अनचाहा, अनगढ़।
ऊ	ऊपर, ऊंचा	उभरना, उतरा, उथला।
औ/अव	हीन, नीचे, दूर	अवगुण, औगुण, औढ़र, औतार, अवतरित।
क/कु	बुरा, बुराई, नीचता	कुपात्र, कुचाल, कुकर्म, कपूत, कुढंग, कुठौर
नि	निषेध, अभाव, रहित	निगोढ़ा, निडर, निकम्मा, निपूता, निधड़क, निपट, निखट्टू, निठल्ला, निहत्था।
पर	पराया, दूसरा	परदेस, परदादा, परतंत्र, परपुत्र, परपोता, परनाना।
भर	भरा हुआ, पूरा	भरपेट, भरमार, भरपाई, भरपूर, भरसक, भराई।

3. विदेशज के उपसर्ग–हिंदी में अरबी-फारसी के लगभग 20 उपसर्ग हैं। अंग्रेजी भाषा के गुछ उपसर्गों का प्रयोग हिंदी में हो रहा है परंतु उल्लेखनीय बात यह है कि अंग्रेजी उपसर्गों द्वारा केवल अंग्रेजी शब्दों का निर्माण होता है लेकिन अरबी-फारसी के उपसर्गों से हिंदी शब्द बनाए जाते हैं। अरबी-फारसी के प्रमुख उपसर्ग हैं–

अरब-फारसी के उपसर्ग–यथा–अल्, ऐन, कम, खुश, गैर, ढर, ना, ब/बा, बद, बिला, बे, ला, सर, हम, हर इनमें से कुछ उदाहरण देखिए–

उपसर्ग	अर्थ	उदाहरण
खुश	प्रसन्न, अच्छाई	खुशहाल, खुशनसीब, खुशदिल, खुशबू, खुशखबरी, खुशमिजाज
ला	बिना, रहित	लावारिस, लाइलाज, लाचार, लापरवाह, लाजवाब
सर	प्रमुख, मुख्य	सरपंच, सरगना, सरताज, सरदार, सरजोर, सरहद
गैर	भिन्न, निषेध	गैरहाजिर, गैरजिम्मेदार, गैरमर्द, गैर-सरकारी
बे	रहित, बिना	बेकसूर, बेवकूफ, बेरहम, बेचारा, बेवाग, बेवफा, बेढब, बेअदब, बेकार।
बा	सहित, साथ	बाकायदा, बाइज्जत, वाअदब, बामुलायजा
हम	एक समान	हमराज, हमवतन, हमउम्र, हमदर्द, हमदम, हमजोली
ना	नहीं	नापसंद, नाबालिग, नादान, नाखुश, नाकारा नालायक, नाचीज, नामुमकिन
ब	साथ	बखूबी, बगैर, बदौलत, बनाम, बदस्तूर
दर	में, के	दरअसल, दरकार, दरम्यान, दरहकीकत, दरगुजर
बद	बुरा	बदनाम, बदसूरत, बदबू, बदमाश, बदचलन, बदहजमी, बदतर।

अंग्रेजी भाषा के उपसर्ग–

उपसर्ग	अर्थ	उदाहरण
पोस्ट	बाद का	पोस्टमार्टम, पोस्टमास्टर
सब	उप (छोटा)	सबइंस्पेक्टर, सबजज, सबडिवीजन
वाइस	उप (छोटा)	वाइस चांसलर, वाइस प्रिंसिपल।
इम्,	निषेध	इमपौसिबल, इम्पोर्टर, इमोरल।
प्री	पहले का	प्रीपेड, प्रीमेडिकल, प्रीइंजीनियरिंग

Scanned with ACE Scanner

उपसर्ग	अर्थ	उदाहरण
डिप्टी	छोटा	डिप्टी डायरेक्टर, डिप्टी सेक्रेटरी।
चीफ	प्रमुख	चीफ कमिश्नर, चीफ काउंसलर, चीफ मिनिस्टर।
हॉफ	आधा	हॉफ टिकट, हॉफ पैंट, हॉफ शर्ट, हॉफ ब्रैड।
हैड	प्रमुख	हैडमास्टर, हैडक्लर्क, हैड बॉय।

(ख) प्रत्यय के आधार पर शब्द निर्माण

प्रत्यय कुछ ऐसे सार्थक और लघुत्तम खण्ड होते हैं जिनका स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता परंतु ये शब्द के अंत में जुड़कर नवीन शब्दों का निर्माण करते हैं। एक परिभाषा के अनुसार शब्दांश धातु रूप या शब्दों के अंत में लगाकर नए शब्दों का निर्माण करने वाले प्रत्यय कहलाते हैं। अथवा डॉ. रामप्रसाद द्विवेदी के अनुसार–वे शब्दांश जो किसी शब्द के पीछे जुड़कर उसके अर्थ में परिवर्तन कर नए शब्दों की रचना करते हैं, उन्हें प्रत्यय कहते हैं। जैसे–छटपटाना में आहट प्रत्यय जुड़कर छटपटाहट शब्द बनता है।

प्रत्यय के भेद

कृत प्रत्यय — तद्धित प्रत्यय

1. कृत प्रत्यय–कृत प्रत्यय केवल क्रिया के मूल धातु के साथ जुड़कर नए शब्द बनाते हैं। ये प्रायः संज्ञा, विशेषण आदि शब्दों का निर्माण करते हैं।, इन्हें कृदंत भी कहा जाता है।

2. तद्धित प्रत्यय–तद्धित प्रत्यय संज्ञा, विशेषण और सर्वनाम के बाद लगकर नए शब्दों का निर्माण करते हैं। जैसे–दया शब्द में आलु प्रत्यय जुड़ने से नया शब्द बनेगा। दयालु। लेकिन हिंदी में कुछ ऐसे प्रत्यय हैं जो तद्धित भी हैं और कृत भी हैं। इसीलिए दोनों का यहां अलग-अलग विवेचन करना व्यर्थ है। हिंदी में प्रत्ययों को चार भागों में विभाजित किया गया है–

(i) तत्सम प्रत्यय (ii) तद्भव प्रत्यय

(iii) देशज प्रत्यय। (iv) विदेशज प्रत्यय

(i) तत्सम प्रत्यय–संस्कृत भाषा के मूल प्रत्यय तत्सम प्रत्यय कहलाते हैं।

प्रत्यय	शब्द
अंत	भिड़ंत, रटंत
अन	ढक्कन, झाड़न, पालन, चिंतन
अक्कड़	भुलक्कड़, पिअक्कड़
आई	पढ़ाई, सुनाई, सिलाई, कमाई, समाई, भलाई
आऊ	बिकाऊ, कमाऊ, खड़ाऊ
आन	मिलान, चालान, उड़ान, थकान
आव	दुराव, चढ़ाव, झुकाव, गिराव, खिंचाव
आवट	दिखावट, सजावट, बुनावट, बनावट
आहट	घबराहट, कुलबुलाहट, मुस्कराहट
आलु	दयालु, कृपालु
इया	बढ़िया, घटिया, लुटिया
ईला	चमकीला, सजीला
ऊ	उताऊ, झाड़ू, सजाऊ

Scanned with ACE Scanner

प्रत्यय	शब्द
हार	रखनहार, चलनहार, प्रहार
इक	नैतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक
इमा	महिमा, नीलिमा, कालिका
तम	उच्चतम, महानतम, कठिनतम, श्रेष्ठतम
त्व	स्त्रीत्व, गुरुत्व, प्रभुत्व
नीय	चिंतनीय, पठनीय, रमणीय
मान	गतिमान, श्रीमान, शक्तिमान
वान	रूपवान, बलवान, धनवान, सत्यवान
आई	चतुराई, अच्छाई, भलाई, बड़ाई, अपनाई
आऊ	उपजाऊ, पंडिताऊ
आहट	कड़वाहट, जगमगाहट, चिकनाहट

(ii) तद्भव प्रत्यय–तद्भव प्रत्यय वे प्रत्यय हैं जो संस्कृत शब्दों के बिगड़े हुए रूप हैं। इनके द्वारा भी हिंदी में शब्द निर्माण होता है बल्कि इनसे हिंदी शब्दों का अधिक निर्माण हुआ है।

प्रत्यय	शब्द
अत	खपत, बचत, रंगत
आंध	कामांध, सड़ांध, जन्मांध
आ	बुरा, छोटा, बड़ा, लड़का, बेटा, घोड़ा, अच्छा।
आई	बुराई, अच्छाई, लड़ाई, बड़ाई, रुलाई, खटाई
आर	चमार, लुहार, सुनार, कुम्हार
आरी	पुजारी, भिखारी, सुनारी, मनियारी
आवट	बनावट, मिलावट, सजावट, लिखावट, थकावट, रुकावट
आस	प्यास, निकास, मिठास
आहट	कड़वाहट, घबराहट, मुस्कुराहट
इन	लुहारिन, जुलाहिन, नाइन, तेलिन, बनियाइन
ईला	रंगीला, चमकीला, शर्मीला, भड़कीला
एरा	सपेरा, चचेरा, लुटेरा, बसेरा, फुफेरा, ममेरा
जा	भांजा, भतीजा
पन	बचपन, लड़कपन, बड़प्पन
वाला	दूधवाला, पानवाला, सब्जीवाला, रेहड़ीवाला, रद्दीवाला, रिक्शावाला
ऊ	झाड़ू, रट्टू, चालू, घबरालू
इया	जड़िया, घटिया, बढ़िया
क	लेखक, पालक
कर	पढ़कर, सोकर, लिखकर, जाकर, खाकर, पीकर

Scanned with ACE Scanner

(iii) देशज प्रत्यय–हिंदी में कुछ ऐसे प्रत्यय भी हैं जो न तो संस्कृत के तत्सम प्रत्यय हैं और न ही तद्भव प्रत्यय हैं बल्कि ये प्रत्यय देशी भाषाओं से जुड़े हुए हैं। प्रत्ययों के उदाहरण–

प्रत्यय	शब्द
अड़	अंधड़, भूखड़, तंगड़
अक्कड़	घुमक्कड़, पियक्कड़, भुलक्कड़
आक	चटाक, सटाक, खटाक
आका	पटाखा, चटाका, धमाका, लड़ाका, खटाका
इयल	मरियल, दढ़ियल, अड़ियल, सड़ियल
आटा	खर्राटा, फर्राटा, सटाका
ऐया	पढ़ैया, खिवैया, रखैया, गवैया
ऐल	रखैल, दबैल

(iv) विदेशी प्रत्यय–हिंदी में कुछ ऐसे प्रत्यय भी हैं जो विदेशी भाषाओं से ग्रहण किए गए हैं। इनमें अरबी फारसी तथा अंग्रेजी के प्रत्यय भी हैं।

(क) अरबी-फारसी प्रत्यय–

प्रत्यय	शब्द
आना	जुर्माना, खजाना, दस्ताना, मरदाना, मेहनताना।
अंदाज	तीरंदाज, गोरन्दाज
आनी	जिस्मानी, मरदानी, जनानी, बर्फानी, रूहानी
इयत	खैरियत, असलीयत, इन्सानियत, हैवानियत
अन	आदतन, मसलन, गालिबन
कार	सलाहकार, काष्ठकार, अदाकार, शिल्पकार, दस्तकार
खोर	घूसखोर, रिश्वतखोर, चुगलखोर, नशाखोर
इंदा	जिंदा, आइंदा
इश	आजमाइश, कोशिश, फरमाइश
गर	जादूगर, बाजीगर, कारीगर
गार	यादगार, रोजगार, मददगार
चा	बगीचा, ढोलचा, देगचा।
ची	मसालची, बंदूकची, देगची, संदूकची,
	ढोलची, अफीमची

तुर्की के प्रत्यय–

दार	मालदार, शानदार, नंबरदार, जमींदार, थानेदार, दुकानदार, खबरदार।
बान	बागबान, दरबान, साहेबान
दान	इत्तरदान, पीकदान, पानदान, कलमदान
ईना	महीना, कमीना, नगीना
बाज	कबूतरबाज, पतंगबाज, धोखेबाज, चालबाज, ड्रामेबाज

Scanned with ACE Scanner

अंग्रेजी के प्रत्यय–

इज्म	सोशेलिज्म, कम्युनिज्म, रोमांनिज्म
इस्ट	कम्युनिस्ट, सोशिलिस्ट।

(ग) समास के आधार पर शब्द-निर्माण–

परस्पर संबंध रखने वाले दो या दो से अधिक शब्दों के मेल को समास कहते हैं अर्थात् समास दो पदों से जुड़कर बनता है। समस्त पद के प्रथम पद को पूर्व पद और दूसरे पद को उत्तरपद कहते हैं। समस्त पद का विग्रह समास विग्रह कहलाता है। इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

'राजा का सैनिक' इसमें दो पद हैं राजा और सैनिक इससे समास बनेगा राजसैनिक। यदि हम इसका विग्रह करते हैं, तो पुनः लिखेंगे राजा का सैनिक। समास में चार बातों का होना आवश्यक है–

1. समास के लिए कम-से-कम दो पदों का होना आवश्यक है। प्रथम पद को पूर्व पद कहते हैं और द्वितीय पद को उत्तर पद कहते हैं।
2. समास होने के बाद दोनों पद अथवा अधिक रूप मिलकर एक संक्षिप्त रूप धारण कर लेते हैं।
3. समास प्रक्रिया करते समय बीच की विभक्तियाँ अथवा कारक चिह्न लुप्त हो जाते हैं।
4. कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर समास में नियमों के अनुसार संधि भी कर दी जाती है।

लेकिन समास और संधि में अंतर है। संधि हमेशा वर्णों में होती है, परंतु समास पदों में होता है। समस्त पद बनाते समय विभक्तियाँ लुप्त हो जाती हैं परंतु संधि करते समय वर्णों का लोप नहीं होता। केवल उनका रूप बदल जाता है। जैसे–

हिम + आलय = हिमालय। इस संबंध में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं–

1. शब्दों के मेल से बनने वाले नए सार्थक शब्द को समास कहते हैं। परंतु वर्णों के मेल से बनने वाले नए सार्थक शब्द को संधि कहते हैं।
2. समास में विभक्तियों का लोप होता है ध्वनियों का परिवर्तन कम होता है, परंतु संधि में समीपवर्ती ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है।
3. सामासिक पद में मूल अर्थ प्रकट हो भी सकता है और नहीं भी लेकिन संधि में शब्दगत अर्थ हमेशा सुरक्षित रहता है।
4. समास में पदों को तोड़ने की प्रक्रिया विग्रह कहलाती है। संधि में शब्दों को तोड़ने की प्रक्रिया विच्छेद कहलाती है।

समास के भेद–पदों की प्रधानता और गौणता के आधार पर समास के निम्नलिखित चार भेद हैं–

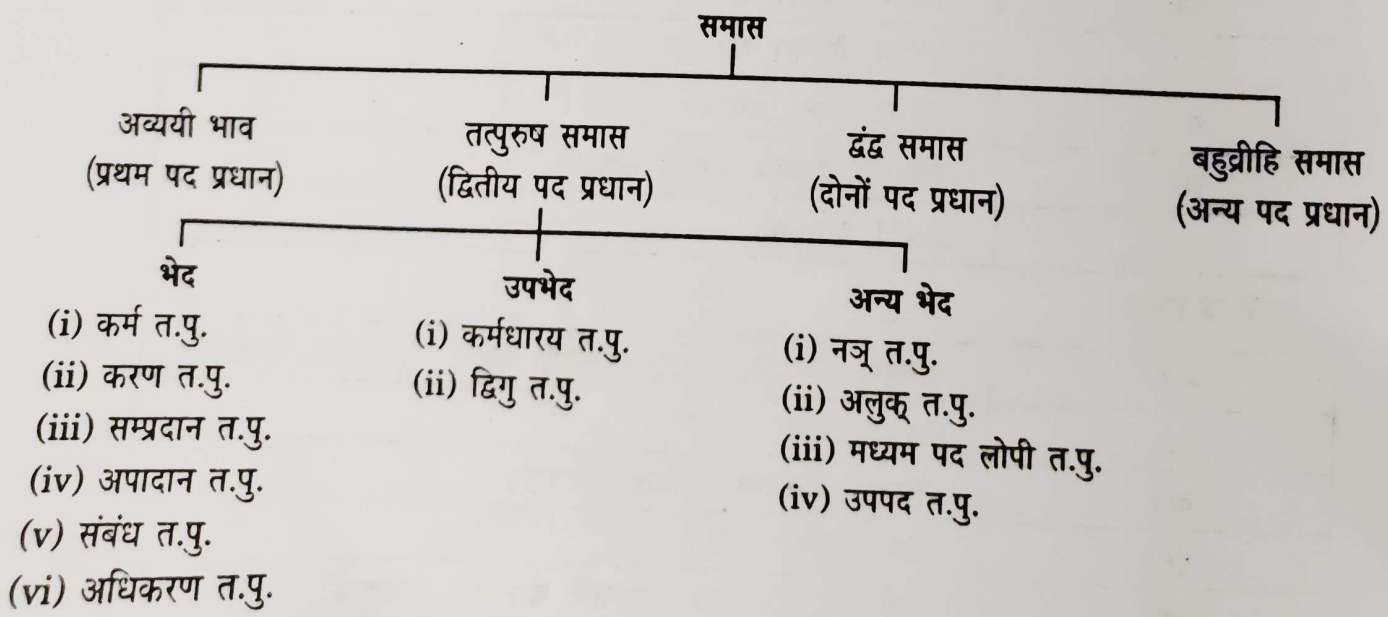

Scanned with ACE Scanner

1. अव्ययी भाव समास–जिस समस्त पद में पूर्व पद प्रधान हो तथा अव्यय हो, समास बनने पर वह समस्त पद अव्यय बन जाए, उसे अव्ययी भाव समास कहते हैं। जैसे–

1. आजीवन – जीवनपर्यंत
2. गली-गली – प्रत्येक गली
3. प्रसंगानुकूल – प्रसंग के अनुकूल
4. यथाशीघ्र – जितना शीघ्र हो सके
5. बेमतलब – बिना मतलब के
6. भरपेट – पेट भरकर
7. यथाबुद्धि – बुद्धि के अनुसार
8. यथासमय – समय के अनुसार

2. तत्पुरुष समास–जिस सामासिक शब्द में उत्तर पद प्रधान हो तथा विभक्तियों का लोप हो, वह तत्पुरुष समास कहलाता है। जैसे–

1. यशप्राप्त – यश को प्राप्त।
2. गिरहकट – गिरह को काटने वाला।
3. कष्ट साध्य – कष्ट से साध्य
4. राजकुमार – राजा का कुमार

विभक्ति लोप के आधार पर तत्पुरुष समास के छः भेद हैं–

(i) कर्म तत्पुरुष (को विभक्ति का लोप)–जिस तत्पुरुष समास को बनाते समय दो पदों के बीच कर्म कारक के चिह्न को लुप्त कर दिया जाए, उसे कर्म तत्पुरुष कहते हैं। जैसे–

1. परलोक गमन–परलोक को गमन
2. गिरहकट–गिरह को काटने वाला
3. माखन चोर–माखन को चुराने वाला
4. रथ चालक–रथ को चलाने वाला

(ii) करण तत्पुरुष (से विभक्ति का लोप)–जिस तत्पुरुष समास को बनाते समय दो पदों के बीच करण कारक के चिह्न को लुप्त कर दिया जाए, उसे करण तत्पुरुष समास कहते हैं। जैसे–

1. अकालपीड़ित – अकाल से पीड़ित
2. हस्तलिखित – हस्त से लिखित
3. तुलसीकृत – तुलसी द्वारा कृत
4. भयाकुल– भय से आकुल

(iii) सम्प्रदान तत्पुरुष (के लिए विभक्ति का लोप)–जिस तत्पुरुष समास को बनाते समय दो पदों के बीच सम्प्रदान कारक के चिह्न को लुप्त कर दिया जाए, उसे सम्प्रदान तत्पुरुष समास कहते हैं। जैसे–

1. देशभक्ति – देश के लिए भक्ति
2. डाकगाड़ी – डाक के लिए गाड़ी
3. राहखर्च – राह के लिए खर्च
4. माल गोदाम – माल के लिए गोदाम
5. स्वतंत्रता आंदोलन – स्वतंत्रता के लिए आंदोलन

(iv) अपादान तत्पुरुष (से, अलग विभक्ति का लोप)–जिस तत्पुरुष समास को बनाते समय दो पदों के बीच अपादान कारक के चिह्न को लुप्त कर दिया जाए, उसे अपादान तत्पुरुष समास कहते हैं। जैसे–

1. पथभ्रष्ट – पथ से भ्रष्ट
2. ऋणमुक्त – ऋण से मुक्त
3. भयभीत – भय से भीत
4. रोगमुक्त – रोग से मुक्त
5. जन्मांध – जन्म से अंधा
6. गुणहीन – गुण से हीन

(v) संबंध तत्पुरुष (का, के, की विभक्तियों का लोप)–जिस तत्पुरुष समास को बनाते समय दो पदों के बीच संबंध कारक के चिह्न को लुप्त कर दिया जाए, उसे संबंध तत्पुरुष कहते हैं, जैसे–

1. राजमार्ग – राजा का मार्ग
2. गंगाजल – गंगा का जल
3. राष्ट्रपति भवन – राष्ट्रपति का भवन
4. गृह स्वामी – गृह का स्वामी
5. सेनापति – सेना का पति
6. जलप्रवाह – जल का प्रवाह
7. घुड़दौड़ – घोड़ों की दौड़

(vi) अधिकरण तत्पुरुष (में, पर विभक्तियों का लोप)–जिस तत्पुरुष समास को बनाते समय दो पदों के बीच अधिकरण कारक के चिह्न को लुप्त कर दिया जाए तो उसे अधिकरण समास कहते हैं। जैसे–

1. युद्धवीर – युद्ध में वीर
2. ग्रामवास – ग्राम में वास
3. कुलश्रेष्ठ – कुल में श्रेष्ठ
4. आप बीती – आप पर बीती
5. घुड़सवार – घोड़े पर सवार
6. लोकप्रिय – लोक में प्रिय

उपभेद–तत्पुरुष समास के अन्य उपभेद

तत्पुरुष समास के दो अन्य उपभेद हैं–

(i) कर्मधारय और (ii) द्विगु।

Scanned with ACE Scanner

(i) कर्मधारय समास–यह समास तत्पुरुष समास का अन्य उपभेद है। इसका दूसरा पद प्रधान होता है और पहला पद गौण होता है। इसके पदों में उपमेय-उपमान का या विशेषण-विशेष्य का संबंध पाया जाता है। जैसे–

विशेषण-विशेष्य संबंध–

1. नील गाय – नीली है जो गाय
2. पीतांबर – पीला है जो अम्बर
3. पर्णकुटी – पत्तों की है जो कुटी
4. काली मिर्च – काली है जो मिर्च

उपमेय-उपमान संबंध–

1. चरण कमल – कमल के समान चरण
2. राजीव नयन – राजीव के समान नयन
3. कमल नयन – कमल के समान नयन
4. मृग नयन – मृग के जैसे नयन

(ii) द्विगु समास–यह समास तत्पुरुष समास का एक अन्य उपभेद है। इसका भी दूसरा पद प्रधान और पहला पद गौण होता है परंतु इसका पूर्व पद संख्यावाची विशेषण होता है। अतः इसका विग्रह करते समय 'का' समूह या 'का समाहार' जैसे शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे–

1. चौपाई – चार पदों का समूह
2. नवनिधि – नौ निधियों का समाहार
3. नवरत्न – नौ रत्नों का समूह
4. चौराहा – चार राहों का समाहार
5. सतसई – सात सौ दोहों का समूह
6. त्रिफला – तीन फलों का समाहार
7. अष्टाध्यायी – आठ अध्यायों का समाहार
8. अष्टसिद्धि – आठ सिद्धियों का समाहार

तत्पुरुष समास के कुछ अन्य भेद भी हैं–

(i) नञ् तत्पुरुष समास–इस तत्पुरुष समास में पूर्व पद न का भाव उत्पन्न करता है, इसमें निषेध के अर्थ में अ या अन् का प्रयोग होता है। जैसे–

1. अभाव – न भाव
2. अधर्म – न धर्म
3. अन्याय – न न्याय
4. अनदेखी – न देखी
5. अयोग्य – न योग्य
6. अनहोनी – न होनी
7. अछूत – न छूत

(ii) अलुक् तत्पुरुष समास–इस समास के दोनों पदों के बीच की विभक्ति का लोप नहीं होता। जैसे–

1. खेचर– खे में विचरण करने वाला।
2. युधिष्ठिर– युद्ध में स्थिर रहने वाला
3. धनञ्जय – धन को जय करने वाला।

(iii) मध्यम पद लोपी तत्पुरुष समास–इस तत्पुरुष समास में दो पदों के बीच दो से अधिक पदों का लोप हो जाता है। जैसे–

1. दही-बड़ा – दही में डूबा हुआ बड़ा
2. रेलगाड़ी – रेल पर चलने वाली गाड़ी
3. घोड़ागाड़ी – घोड़ों द्वारा खींची जाने वाली गाड़ी।

(iv) उपपद तत्पुरुष समास–इस तत्पुरुष समास के दूसरे पद का पृथक् रूप से प्रचलन नहीं होता, जैसे–

1. पंकज – पंक + ज (कीचड़ में उत्पन्न)
2. नीरद – नीर + द (नीर का दाता)

3. द्वंद्व समास–जिस समस्त पद में योजक शब्दों का लोप होता है और दोनों पद समान होते हैं।, उसे द्वंद्व समास कहते हैं। इसका विग्रह करते समय दो पदों के बीच और योजक का प्रयोग किया जाता है। जैसे–

1. गंगा-यमुना – गंगा और यमुना
2. राजा-रंक – राजा और रंक
3. दाल-रोटी – दाल और रोटी
4. गरीब-अमीर – गरीब और अमीर
5. भाई-बहन – भाई और बहन
6. राजा-प्रजा – राजा और प्रजा
7. गुण-दोष – गुण और दोष
8. छोटा-बड़ा – छोटा और बड़ा
9. जीवन-मरण – जीवन और मरण

Scanned with ACE Scanner

(vii) ध्वन्यात्मक आवृत्ति (Phonetic Reduplication)–कुछ भाषाओं में कुछ शब्दों का रूपसाधन उनकी कुछ या सभी ध्वनियों की आवृत्ति करके किया जाता है। यह शब्द के आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर देखा जा सकता है, जैसे–अफ्रीका की एक भाषा में 'इरिक' का अर्थ है–'चलना' जबकि 'इरिकरिक' का अर्थ है–'चलाता है'। अतः यहाँ 'रिक' ध्वनि की पुनरावृत्ति करते हुए शब्दरूप निर्मित किया गया है।

(viii) ध्वनि गुण (Suprasegmental Features)–विश्व की कुछ अयोगात्मक भाषाओं में ध्वनि गुणों, जैसे–बलाघात, सुर आदि की मात्रा में परिवर्तन करके भी शब्दों का रूपसाधन किया जाता है।

(ix) युक्त–ऐसे बद्ध रूपिम जो मूल शब्द के साथ पदबंध स्तर पर आते हैं, युक्त कहलाते हैं। ये प्रत्यय की तरह शब्द में पूरी तरह से जुड़े भी नहीं होते और अलग भी नहीं होते, जैसे–अंग्रेजी में Ram's book. में प्रयुक्त।

◆◆◆

रूप-परिवर्तन के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए रूप परिवर्तन की दिशाओं एवं कारणों की विवेचना कीजिए।

अथवा

रूप-परिवर्तन की दिशाओं एवं कारणों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–रूप-परिवर्तन का स्वरूप–भाषाविज्ञान में रूपिम के अन्तर्गत मुक्त तथा बद्ध रूपों की चर्चा की जाती है। मुक्त रूप को शब्द की संज्ञा दी जाती है तथा बद्ध रूप शब्द के साथ मिलकर नया शब्द बनाते हैं। कृ धातु से कार शब्द से आ-, प्र-, वि-, उपसर्गों से आकार, प्रकार, विकार आदि शब्द बनते हैं। इसी प्रकार प्रत्ययों के योग से भी नए-नए शब्दों का विकास होता है। जैसे, आवश्यक के साथ-ता प्रत्यय लगाकर आवश्यकता शब्द बना। अरबी-फारसी उपसर्गों के योग से भी कई शब्दों का निर्माण होता है। बे- से बेकार, बेनाम, बेरोज़गार और बद- से बदज़ात, बदतमीज़, बदबू आदि शब्दों का निर्माण हम देखते हैं।

रूप परिवर्तन एक ऐसी भाषिक संघटना है जिसके अन्तर्गत भाषा में हुए विभिन्न परिवर्तनों के सन्दर्भ में भाषा परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है। रूप परिवर्तन की एक ओर शुरुआत ध्वनि परिवर्तन से होती है और दूसरी ओर कोश परिवर्तन से भी इसका गहरा सम्बन्ध दिखाई देता है। राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सम्पर्क के कारण भाषा में विजेता समुदाय की भाषा से बड़ी मात्रा में शब्द विजित भाषा का अंग बन जाते हैं। भाषा नियोजन के अन्तर्गत भाषा के मानकीकरण के फलस्वरूप लिपि-वर्तनी के स्तर पर हुए परिवर्तन भी रूप परिवर्तन का आधार बनते हैं।

रूप परिवर्तन की दिशाएँ–रूप परिवर्तन का सम्बन्ध ध्वनि परिवर्तन से भी जुड़ा हुआ है। ध्वनि परिवर्तन के अन्तर्गत कभी भाषा में किन्हीं स्वरों का लोप हो जाता है तो किन्हीं का आगम। कभी असमान व्यंजन-गुच्छों का समान व्यंजन-गुच्छों में परिवर्तन होता है तो कभी समान व्यंजन-गुच्छों सरलीकरण। ध्वनि परिवर्तन दो प्रकार के माने जाते हैं–अनियमित तथा नियमित। ध्वनि परविर्तन पहले स्वनिक परिवर्तन के रूप में प्रारम्भ होता है, बाद में सामाजिक स्वीकृति मिलने पर स्वनिमिक परिवर्तन का रूप ले लेता है। स्वनिक परिवर्तन को अनियमित ध्वनि परिवर्तन तथा स्वनिमिक परिवर्तन को नियमित ध्वनि परिवर्तन कहा जाता है। जब ऐसे ध्वनि परिवर्तन के नियम पूरे भाषा समुदाय द्वारा स्वीकृत हो जाते हैं ब उन्हें नियमित ध्वनि परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है। रूप परिवर्तन के विभिन्न प्रकारों अथवा दिशाओं के बारे में नीचे दिया जा रहा है–

(i) लोप–इसके अन्तर्गत शब्द की किसी शब्द की किसी ध्वनि का लोप हो जाता है जैसे 'अभ्यंतर' शब्द का 'भीतर' शब्द में परिवर्तन 'अ' स्वर ध्वनि के लोप के कारण हुआ है। जब संयुक्त ध्वनियों के उच्चारण में कठिनाई होती है तब उच्चारण की सुगमता को ध्यान में रखते हुए उनमें से एक ध्वनि का लोप कर दिया जाता है। जैसे, ज्येष्ठ से जेठ, दुग्ध से दूध, श्रेष्ठ से सेठ विकसित शब्द इस प्रक्रिया के उदाहरण हैं।

(ii) आगम–कभी-कभी शब्द के आरम्भ में ऐसे संयुक्ताक्षर आ जाते है, जिनका उच्चारण आसानी से नहीं हो सकता। जब किसी स्वर की सहायता से उच्चारण आसानी से हो जाता है। जैसे–स्कूल, स्तुति, स्थिर, स्टूल आदि शब्दों का उच्चारण इ या अ स्वर के आगम के साथ इस्कूल, अस्तुति, अस्थिर, इस्टूल के रूप में किया जाता है। यह स्वरागम केवल उच्चारण में ही होता है, लेखन में नहीं। यहाँ स्वरागम शब्द के आदि में हुआ है। इसे आदि स्वरागम कहते हैं।

कहीं-कहीं शब्द के मध्य में स्वरागम किया जाता है। जैसे–'सूर्य' शब्द से 'सूरज', धर्म से धरम, कर्म से करम या 'पूर्व' से 'पूरब' में मध्य में 'अ' ध्वनि का आगम हुआ है। इस प्रकार नई ध्वनि के आगम के द्वारा सूरज, धरम, करम तथा पूरब आदि नए शब्दों का निर्माण हुआ। ये मध्य स्वरागम के उदाहरण हैं।

Scanned with ACE Scanner

(iii) ध्वनियों का स्थान परिवर्तन या विपर्यय–विपर्यय का अर्थ है उलटना। किसी शब्द में जब दो ध्वनियों का विपर्यय हो जाता है या ध्वनियाँ आपस में स्थान बदल लेती हैं तब नए शब्द का निर्माण होता है। जैसे 'वाराणसी' शब्द से बने 'बनारस' शब्द में 'ण' ध्वनि 'न' में परिवर्तित होकर 'र' के स्थान पर तथा 'र' ध्वनि 'ण' के स्थान पर चली गई, जिससे इस नए शब्द का निर्माण हुआ। विपर्यय सामान्यतया दो कारणों से होता है–बोलने में तेज़ी से या सुनने की कमी के कारण। अमरूद से अरमूद, पहुँचना से चहुँपना, डूबना से बूड़ना आदि विपर्यय के उदाहरण हैं।

(iv) अनुनासिकता के कारण परिवर्तन–जब तत्सम शब्द का नासिक्य व्यंजन अनुनासिकता में बदल जाता है तो इस ध्वनि परिवर्तन द्वारा नया तद्भव शब्द बनता है। जैसे 'कम्पन' से काँपना, दन्त से दाँत, मंजन से माँजना आदि शब्दों में नासिक्य व्यंजन के अनुनासिकता में बदलने के कारण 'काँपना', दाँत, माँजना आदि शब्दों का विकास हुआ।

(v) समीकरण–समीकरण के रूप में ध्वनि परिवर्तन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे, 'कर्म' शब्द से 'काम' शब्द का विकास पहले 'कर्म' से 'कम्म' के रूप में हुआ (असमान व्यंजन-गुच्छ से समाजन व्यंजन-गुच्छ, फिर ह्रस्व स्वर का दीर्घ स्वर में परिवर्तन (समान व्यंजन-गुच्छ का सरलीकरण तथा ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण) हुआ। इसके फलस्वरूप 'काम' शब्द निर्मित हुआ। इसी प्रकार 'सप्त' से 'सात' शब्द का निर्माण पहले सप्त से सत्त तथा सत्त से सात का विकास हुआ। इसी प्रक्रिया को उदाहरणों के अन्तर्गत पुत्र से पूत, कल्प से कल, रात्रि से रात, पत्र से पात या पत्ता निद्रा से नींद आदि शब्दों को लिया जा सकता है। ये पुरोगामी समीकरण के उदाहरण हैं।

पश्चगामी समीकरण के भी कई उदाहरण मिलते हैं। वार्ता से बात, दुग्ध से दूध, ऊर्णा से ऊन, दूर्वा से दूब पश्चगामी समीकरण के उदाहरण है।

(vi) विषमीकरण–जब दो निकटस्थ ध्वनियों के उच्चारण में कठिनाई होती है तब उनमें भेद या विषमता ला दी जाती है। इस परिवर्तन को विषमीकरण कहा जाता है। जैसे–कंकण से कंगन, प्रकट से प्रगट शब्दों को विषमीकरण के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

(vii) महाप्राणीकरण–इसी प्रकार 'शुष्क' शब्द के 'क' अल्पप्राण व्यंजन के महाप्राण 'ख' में परिवर्तन होकर 'सूखा' शब्द बना।

(viii) स्वर-भक्ति–संयुक्त व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा को काफी असुविधा होती है। इस असुविधा को दूर करने के लिए संयुक्त व्यंजनों के बीच कोई स्वर रख दिया जाता है। इस प्रक्रिया को स्वर-भक्ति कहते हैं। वैसे स्वर-भक्ति एक प्रकार का स्वरागम ही है। इसे हम ऊपर मध्य स्वरागम के रूप में देख चुके हैं। स्वर-भक्ति के उदाहरणों के रूप में व्रत से बरत, सत्येन्द्र से सतिंदर, स्नान से सनान, स्मरण से सुमिरन आदि शब्दों का विकास देखा जा सकता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि भाषाओं में विभिन्न दिशाओं में परिवर्तन होता है।

रूप परिवर्तन के कारण–रूप परिवर्तन के अनेक कारण बताए जाते हैं। रूप परिवर्तन सम्बन्धी कारणों को हम दो वर्गों में रख सकते हैं–आन्तरिक कारण और बाह्य कारण।

1. आन्तरिक कारण–आन्तरिक कारणों के अन्तर्गत निम्नलिखित कारणों को रखा जा सकता है–

(i) सरलता का आग्रह–जिस प्रकार सरलता तथा सौकर्य के फलस्वरूप भाषा की ध्वनियों में परिवर्तन होता है, इसी प्रकार पद अथवा रूप में भी परिवर्तन होता है। संस्कृत में हरि, मुनि तथा साधु के तृतीया एकवचन के रूप हरियाणा, मुनिना और साधुना में-णा या-ना का प्रयोग सरलता के आग्रह का ही परिणाम है। सामान्यतया शब्द की अन्तिम ध्वनि में भेद के कारण इनके रूपों में अन्तर होना चाहिए था, किन्तु सरलता के कारण इन्हें एकरूप कर दिया गया।

(ii) बलाघात–बल देने से जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार रूप में भी परिवर्तन होता है। 'खालिस' के स्थान पर 'निखालिस' का प्रयोग बल देने का ही परिणाम है। 'श्रेष्ठ' शब्द में अतिशयता का भाव पहले से ही मौजूद है, किन्तु बल देने के लिए 'श्रेष्ठतम' और 'सर्वश्रेष्ठ' रूपों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार 'स्वादिष्ट' भी अतिशय का वाचक है परन्तु बल देने के कारण 'बहुत स्वादिष्ट' या 'अति स्वादिष्ट' का प्रयोग किया जाता है।

(iii) सादृश्य–सादृश्य को भी ध्वनि परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण कारण माना गया है। किसी दूसरे शब्द के ध्वनि साम्य के आधार पर शब्द की ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। सादृश्य का प्रभाव शब्दों पर भी पड़ता है। जैसे–'द्वादश' के सादृश्य पर एकदश के स्थान पर 'एकादश' तथा 'पैंतालीस' के सादृश्य पर 'सैंतालीस' में अनुनासिकता का आगम इसके कुछ उदाहरण हैं। तीन, चार, पाँच से 'तीनों', 'चारों' तथा 'पाँचों' के सादृश्य पर दो से दोनों का बनना भी सादृश्य का उदाहरण है। संस्कृत में

Scanned with ACE Scanner

...लिंग में प्रयुक्त शब्द 'श्वास' से विकसित 'साँस' का प्रयोग आशा के तद्भव रूप आस के सादृश्य पर स्त्रीलिंग में होने लगा। ...भी में प्रयुक्त कई पुल्लिंग तत्सम शब्दों (आत्मा, आय, आयु, गन्ध आदि) का प्रयोग अरबी-फारसी शब्दों (रूह, आमद, उम्र, बू ...आदि) के प्रभाव के कारण स्त्रीलिंग में होने लगा।

(iv) **एक शब्द के दो रूपों का चलन**–भाषा में जब एक अर्थ के लिए दो शब्दों का चलन हो जाता है, ऐसी स्थिति में उनमें ...एक शब्द लुप्त होने लगता है। उदाहरण के लिए हिन्दी में एक ही अर्थ में शब्द के तत्सम रूप के साथ-साथ तद्भव रूप भी ...लने लगे। ऐसी स्थिति में उनके अर्थ में परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। तत्सम रूप से उच्च अर्थ तथा तद्भव रूप से हीन अर्थ ...का बोध होने लगा। जैसे, 'स्तन' और 'थन' एक ही शब्द के विकसित रूप होते हुए भी, दोनों के अर्थ में भेद हो गया। 'स्तन' ...प्रयोग महिला के लिए और 'थन' का प्रयोग पशु के लिए होने लगा। 'ब्राह्मण' और 'बामन' में भी अर्थ का अन्तर हो गया। ...ब्राह्मण' का प्रयोग 'शिक्षित ब्राह्मण' और 'बामन' का प्रयोग 'निरक्षर ब्राह्मण' के लिए होने लगा। इस प्रकार कई तत्सम और ...तद्भव रूपों में स्पष्ट अर्थ-भेद विकसित हो गया और एक ही शब्द के दो रूपों का चलन शुरू हो गया।

(v) **अज्ञान व असावधानी के कारण अशुद्ध प्रयोग**–कई बार लोग अप्रचलित शब्दों का प्रयोग अज्ञानवश और असावधानीपूर्वक ...करते हैं। उनका अनुकरण करते हुए दूसरे व्यक्ति भी अशुद्ध प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार शब्द पर एक नए अर्थ का आरोपण ...हो जाता है। संस्कृत में 'धन्यवाद' शब्द का प्रयोग पहले 'प्रशंसा' के लिए किया जाता था, किन्तु अब इसका प्रयोग 'शुक्रिया' ...के अर्थ में होने लगा है।

(vi) **भावावेश तथा व्यंग्योक्ति**–जब व्यक्ति आवेश में होता है तब वह शब्दों का प्रयोग विचित्र रूप से करने लगता है। ...कई बार प्रेमातिरेक में पिता अपने पुत्र को 'पाजी' या 'गधा' कह देते हैं। ऐसे में उनका उद्देश्य बुरा न होकर प्यार जताना होता ...है। इसी प्रकार अंतरंग मित्रों में एक दूसरे को 'साला', 'बेट' आदि सम्बोधन इन शब्दों के निहित अर्थ में परिवर्तन ला देते हैं। ...ऐसे शब्द गाली न होकर आत्मीयता के बोधक बन जाते हैं। 'मोटी बुद्धि', 'अक्ल का धनी' का शाब्दिक अर्थ बुद्धिमान होता है ...किन्तु व्यंग्य के कारण इनका प्रयोग 'मूर्ख' का अर्थ देने लगता है। उद्वेग या आवेश में आकर बोलने के ढंग से भी अर्थ परिवर्तन ...होता है। सामान्य तौर पर 'गुरु' शब्द सम्मान का बोधक है, किन्तु व्यंग्य के रूप में 'कहो गुरु' या 'वह तो बड़ा गुरु निकला' में ...इसका अर्थ 'चालाक' या 'मक्कार' हो जाता है।

2. **बाह्य कारण**–बाह्य कारणों के अन्तर्गत निम्नलिखित कारणों को रखा जा सकता है–

(i) **भौगोलिक कारण**–कुछ विद्वान् भाषा परिवर्तन में भौगोलिक प्रभाव को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार जलवायु ...का प्रभाव मनुष्य के शारीरिक गठन तथा चरित्र एवं ध्वनि पद्धति पर पड़ता है। पहाड़ी, मरुभूमि के निवासी ज्यादा परिश्रमी एवं ...सुगठित होते हैं। उनकी भाषा में पौरुष दिखाई देता है। इसके विपरीत मैदानी भागों में रहने वाले लोगों में व्यक्तित्व की कोमलता ...दिखाई देती है। इसका प्रभाव भाषा पर भी पड़ता है।

(ii) **ऐतिहासिक कारण**–ऐतिहासिक कारणों में विदेशी आक्रमण, व्यापारिक सम्बन्ध आदि को रख सकते हैं। हिन्दी की ...शब्द व्यवस्था में इतिहास का विशिष्ट योगदान रहा है। अरबी-फारसी सम्पर्क के कारण हिन्दी में ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियाँ भाषा में ...आईं। शब्द स्तर पर इन ध्वनियों से बने हजारों शब्द हिन्दी के शब्द-भण्डार का अंग बन गए। जैसे–वज़ीफ़ा, हिफ़ाज़त, ख़त, ख़ता, ...ज़ुल्म, जलालत, ज़लज़ला, लाज़नी, फ़ालतु, फ़िज़ूल गफ़लत आदि शब्द अरबी-फ़ारसी से हिन्दी में आए हैं। इसी प्रकार अंग्रेजों के ...सम्पर्क के कारण भी हजारों शब्द हिन्दी में आए। इसके बारे में आगत शब्दावली में विस्तार से देखेंगे।

(iii) **राजनैतिक-सांस्कृतिक कारण**–राजनैतिक-सांस्कृतिक प्रभाव के कारण एक भाषा में दूसरी (विदेशी) भाषा के शब्द ग्रहण ...कर लिए जाते हैं। शासकों की भाषा के रूप में सम्पर्क के कारण अरबी-फ़ारसी से कलम, क़ागज़, लिफाफा, जिल्द आदि शब्द हिन्दी ...में प्रयोग होते लगे। इसी प्रकार अंग्रेजी के सम्पर्क के कारण भी टिकट, स्टेशन, रेल, रेडियो, रोड, ट्रेन, ट्राम, ट्रक, ड्राइवर, ड्रम, ड्रेस, ऑक्सीजन, नाईट्रोजन, हाइड्रोजन, हाइवे, टी,वी., टेलीफोन, मोबाइल आदि शब्द हिन्दी भाषा में सम्मिलित हो गए हैं। इसी प्रकार द्रविड़ भाषाओं से भी हिन्दी ने सैकड़ों शब्द (दोसा, इडली, उपमा, उतप्पम, रसम आदि) ग्रहण किए हैं। इसी प्रकार अनेक विदेशी भाषाओं से भी शब्द ग्रहण किए हैं। जैसे, तूफ़ान और चाय (चीनी से), सुनामी (जापानी से), कमीज और रेस्तराँ (फ्रांसीसी से)। भारत में ही नहीं, दूसरे देशों में भी अनेक बार सांस्कृतिक जागरण हुए हैं, जब रूढ़ि और पुरातनता को छोड़कर नवीनता को अपनाया गया है। भारत में आर्यसमाज ने हिन्दी को प्रमुखता दी और पंजाब में उर्दू के स्थान पर संस्कृत के तत्सम शब्दों का चलन प्रारम्भ हुआ। इस सांस्कृतिक पुनर्जागरण ने भाषा के स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। तत्सम और तद्भव रूपों का प्रयोग एक साथ होने लगा।

Scanned with ACE Scanner

(iv) साहित्यिक कारण–भाषा के परिवर्तन में कभी-कभी साहित्यिक प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। भारत में भक्ति आन्दोलन के चलते कि लेखक लोकभाषाओं का प्रयोग करने लगे। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि कवियों ने विभिन्न बोलियों को अभिव्यंजना की ऐसी क्षमता प्रदान की जो पहले नहीं देखी गई थी। बोलियों को भाषा का रूप प्रदान किया। अवधी और ब्रज बोलियाँ भाषा बन गईं। आधुनिक युग में छायावाद ने भी ऐसा ही काम किया। खड़ी बोली को काव्य-भाषा बनाने का श्रेय छायावाद को ही जाता है।

(v) आगत शब्दों का प्रभाव–भाषा सम्पर्क के कारण एक दूसरे की भाषाओं को प्रभावित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। भारत में मुसलमानों के आगमन के कारण हमारी भाषा में अरबी-फारसी से हजारों आगत शब्द हिन्दी में आए। जैसे–ईमान, फुरसत, कदम, मैदान आदि फारसी से; हवा, हुनर, तावीज, किताब आदि अरबी से; कैंची, काबू, चाकी, गलीचा, तोप, दारोगा, बहादुर, सौगात आदि तुर्की से आए हैं। ये आज हिन्दी की शब्द-सम्पदा का अभिन्न अंग बन चुके हैं। इसी प्रकार अंग्रेजों के सम्पर्क के कारण हज़ारों अंग्रेजी शब्द भी हिन्दी में रच-पच चुके हैं। जैसे–ऑफिस, स्प्रिंग, गिलास, कॉलेज, एजेंट, कमीशन आदि। अरबी-फ़ारसी से उपसर्ग और प्रत्ययों के स्तर पर भी काफी बद्ध रूपिम हिन्दी में लिये गए हैं। जैसे–बेकार, बेरहम, बेरोज़गार, बेवकूफ़, बेनाम, लाइलाज, लाइल्म, बदकार, बदज़ात, बदमिज़ाजी, बदहवास, खुशफ़हमी, खुशमिजाज़ आदि। इसी प्रकार बहुवचन बनाने के लिए मकान से मकानात, कागज़ से कागज़ात, गवाह से गवाहान आदि संरचनाएँ हिंन्दी व्याकरण का अनुसरण नहीं करतीं। इस प्रकार, हिन्दी पद व्यवस्था तथा शब्द-भण्डार में परिवर्तन हुए हैं।

(vi) किसी जाति विशेष के प्रति मनोवृत्ति का विकास–किसी समाज, जाति या राष्ट्र के प्रति जैसी भावना होती है, उसकी छाया शब्दों के अर्थों पर भी झलकती है। 'असुर' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद की ऋचाओं में देवताओं के लिए किया गया है। उस समय ईरानियों के प्रति भारतीयों के विचार बुरे नहीं थे। जैसे-जैसे विचार बदले और ईरानियों के प्रति दुर्भावनाएँ पैदा हुईं, तब 'असुर' शब्द का अर्थ 'राक्षस' हो गया। साम्प्रदायिक दंगों के दौरान 'मुसलमान' और 'हिन्दु' शब्द भी घृणा और अविश्वास का सूचक बन जाते हैं। हिन्दुओं को 'काफ़िर' कहने के पीछे भी एक समुदाय की यही मनोवृत्ति झलकती है।

(vii) भाषा का आधुनिकीकरण–पिछली दो शताब्दियों में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। असंख्य नई वस्तुओं और तत्त्वों का आविष्कार हुआ है। उनके नामकरण के लिए हजारों नए शब्द गढ़ने पड़े हैं। भाषा नियोजन के अन्तर्गत भाषा के आधुनिकीकरण के फलस्वरूप वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का विकास किया गया है। तब नए गढ़े हुए शब्दों को अर्थ प्रदान किये गए हैं। हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण के प्रयास के अन्तर्गत लगभग सात लाख नए शब्द विकसित किये गए हैं। कुछ शब्द संकर शब्दावली के रूप में विकसित हुए हैं। जैसे–'ऑक्सीकरण', 'रेडियोधर्मिता', 'कागज़पत्र', 'रेलगाड़ी' आदि। इस प्रकार भाषा के आधुनिकीकरण के अन्तर्गत हिन्दी भाषा में सात लाख से अधिक तकनीकी शब्दों का निर्माण किया गया है जिनसे भाषा अत्यन्त समृद्ध हुई है।

(viii) अन्य कारण–कई बार एक भाषा को बोलने वाला समुदाय कई समूहों में बिखर जाता है तब एक ही शब्द विभिन्न समूहों में अलग-अलग अर्थ में विकसित होने लगता है। जैसे संस्कृत में 'वाटिका' शब्द का अर्थ 'बगीचा' था। भोजपुरी में यही शब्द विकसित होकर 'बारी' बगीचे का अर्थ देता है, किन्तु बांग्ला में यही शब्द 'बाड़ी' के रूप में विकसित होकर 'घर' का अर्थ देता है। कभी-कभी किसी शब्द विशेष के उच्चारण में किसी विशेष ध्वनि पर बल देने से अन्य ध्वनियाँ कमज़ेर पड़ जाती है। जैसे 'उपाध्याय' शब्द में 'ध्या' पर अधिक बल देने से 'झा' शब्द विकसित हो गया।

◆◆◆

अभिहितान्यवाद और अन्विताभिधानवाद

पद एवं वाक्य के संदर्भ में अभिहितान्यवाद एवं अन्विताभिधानवाद की सम्यक् विवेचना कीजिए।

अथवा

अभिहितान्यवाद एवं अन्विताभिधानवाद का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–अभिहितान्यवाद एवं अन्विताभिधानवाद का स्वरूप–पद और वाक्य के संबंध में न्यायदर्शन, मीमांसा दर्शन और व्याकरण दर्शन में बहुत व्यापक रूप से चर्चा की गई है। परंतु पद और वाक्य के महत्त्व के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद भी हैं। मीमांसा में पद और वाक्य के सापेक्ष महत्त्व पर दो विभिन्न मत प्रस्तुत किए गए हैं। ये हैं–(क) अभिहितान्यवाद (पदवाद) (ख) अन्विताभिधानवाद (वाक्यवाद)।

Scanned with ACE Scanner

यह तो निश्चित है कि भाषा भावाभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसलिए सभ्य मानव जाति द्वारा भाषा का ही प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक भाषा में ध्वनियों के उचित क्रम के प्रयोग से ही शब्दों का निर्माण होता है। भाषा में प्रयुक्त होने वाले सभी शब्द सार्थक होते हैं परन्तु इन शब्दों की सार्थकता मानसिक स्तर पर होती है। इसलिए इन शब्दों को वाक् प्रतीक कहा जाता है। जब कोई शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने के योग्य हो जाता है तो उसे हम पद कहते हैं। वाक्य का अध्ययन करते समय उसमें प्रयुक्त व्यवस्थित विभिन्न पदों के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि शब्द जब व्याकरणिक योग्यता पा लेता है तो उसे पद कहा जाता है। व्याकरणिक योग्यता का मतलब है शब्द में वाक्य बनाने की क्षमता होना अर्थात् जब शब्द वाक्य में स्थान प्राप्त कर लेता है तब उसे पद कहा जाता है।

पद रचना में शारीरिक और मानसिक दोनों पक्ष काम करते हैं। पद का उच्चारणात्मक या लिखित रूप शारीरिक है, इसे हम देख सकते हैं और सुन भी सकते हैं। पद की सार्थकता मानसिक पक्ष है क्योंकि इसे हम मानसिक रूप से अनुभव भी कर सकते हैं परन्तु पद और वाक्य में अन्तर है। पद भाषा की वह इकाई है जो व्याकरणिक योग्यता प्राप्त कर लेती है परन्तु वाक्य भाषा की पूर्ण सार्थक इकाई है। पद अध्ययन में पदों की रचना का अध्ययन किया जाता है। पद विभिन्न व्याकरणिक कोटियों–लिंग, वचन, पुरुष, कारक, काल आदि के प्रयोग पद्धति के कारण ही अध्ययन के विषय हैं परन्तु वाक्य में विभिन्न पदों की स्थिति स्वरूप और योग का अध्ययन किया जाता है। हमें यहाँ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए पद वाक्य का एक अवयव है। भले ही वह सार्थक इकाई है परन्तु भाषा की पूर्ण सार्थक इकाई तो वाक्य ही है इसलिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि पद और वाक्य में से कौन अधिक महत्त्वपूर्ण इकाई है। यद्यपि पाणिनि और पतंजलि ने पद के महत्त्व को स्वीकार किया था लेकिन दोनों ने यह कहा कि भाषा का आरम्भ वाक्य से ही होता है। पद तो वाक्य के खण्ड या अवयव हैं। आगे चलकर मीमांसा दर्शन के दो प्रमुख आचार्यों ने वाक्य और पद के सापेक्ष महत्त्व पर गंभीर चिंतन किया। प्रसिद्ध मीमांसक आचार्य कुमारिल भट्ट ने अभिहितान्वयवाद का प्रवर्तन किया और वाक्य की अपेक्षा पद को विशेष महत्त्व दिया। इसलिए उनके मत को **पदवाद** भी कहा गया, इसके बाद कुमारिलभट्ट के शिष्य आचार्य प्रभारक पद की अपेक्षा वाक्य को अधिक महत्त्व प्रदान करते हुए अन्विताभिधानवाद का प्रवर्तन किया। वाक्य को गौरव प्रदान करने के कारण इस मत को **वाक्यवाद** भी कहा गया।

(क) अभिहितान्वयवाद (पदवाद)–

पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि इस सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य कुमारिलभट्ट थे। उन्होंने पद को अधिक गौरव प्रदान करते हुए कहा–

"अभिहितानाम् पदार्थानाम् अन्वयः।"

इस मत के अनुसार पदों के द्वारा अभिहित या व्यक्त अर्थों की पारस्परिक अन्विति ही वाक्य है अर्थात् विभिन्न पदों की अन्विति प्रयोग से ही वाक्य भावों को स्पष्ट करने में समर्थ होता है। **पाणिनि** ने पद की परिभाषा देते हुए कहा **"सुप्तिङन्तं पदम्"** अर्थात् सुप् (संज्ञा विभक्ति) तथा 'तिङ्' (क्रिया विभक्ति) के परस्पर योग से ही पद बनता है। पदों के बिना वाक्य भावाभिव्यक्ति नहीं का सकता। जब तक शब्द व्याकरणिक कोटियों को धारण नहीं करता तब तक वह वाक्य में प्रयुक्त नहीं हो सकता। इसलिए पद वाक्य की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। कुमारिल भट्ट ने ही पद को महत्त्व प्रदान करते हुए तीन दशाओं की ओर संकेत किया है।

1. **योग्यता**–योग्यता से तात्पर्य है–पदों के पारस्परिक अन्वय में बाधा न होना। पदान्वय और अर्थ की प्रतीति, दोनों दृष्टियों में पदों के अन्वय में बाधा उत्पन्न हो सकती है। यदि ऐसा हो जाए तो अर्थ की प्रतीति नहीं हो पाती। एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ संबंध कराने में बाधा न होना ही योग्यता कहलाता है। अर्थ की दृष्टि से बाधा वहाँ उपस्थित होती है जहाँ किसी वाक्य के पदों में उचित अर्थ की प्रकाशन की योग्यता नहीं होती। उदाहरण के रूप में कुछ वाक्य देखिए–

- वृक्ष को अग्नि से सींचो।
- मकान को प्यास लगी है।
- दीवार खाती है।

इन वाक्यों में योग्यता सम्बन्धी दोष देखा जा सकता है क्योंकि वृक्ष को पानी से सींचा जाता है, अग्नि से नहीं अग्नि तो वृक्ष को जला सकती है। मकान एक निर्जीव वस्तु है। उसे प्यास नहीं लग सकती, प्यास केवल प्राणधारी जीवों को लगती है, निर्जीव वस्तुओं को नहीं। सजीव प्राणियों में ही खाने की प्रक्रिया देखी जा सकती है, निर्जीव वस्तुओं में नहीं। अतः

Scanned with ACE Scanner

व्याकरण अथवा पद विन्यास की दृष्टि से भले ही ये सब वाक्य सही हों लेकिन अर्थ की दृष्टि से सही नहीं हैं। इसी प्रकार लड़की खेलता है। बच्चे रोता है। इन वाक्यों में व्याकरणिक त्रुटियों के कारण योग्यता का अभाव है। यह अयोग्यता चार प्रकार की हो सकती है–

- लिंग विषयक अयोग्यता
- वचन विषयक अयोग्यता
- पुरुष विषय अयोग्यता
- विभक्ति विषयक अयोग्यता।

2. आकांक्षा–आकांक्षा का अर्थ है–इच्छा। किसी वाक्य को सुनकर उसके पूरे अर्थ को समझने के लिए यदि अन्य पदों की इच्छा या जिज्ञासा बनी रहती है तो उसे आकांक्षा कहते हैं। वाक्य तभी पूर्ण माना जाएगा जब उसे सुनकर हमें पूर्ण अर्थ की प्रतीति हो जाएगी। यदि उसका अर्थ अधूरा रहता है और श्रोता की जिज्ञासा भी बनी रहती है तो उसे हम पूर्ण वाक्य नहीं कह सकते। यदि कोई व्यक्ति अपने मुख से 'दिल्ली' शब्द का उच्चारण करके चुप रह जाता है तो श्रोता दिल्ली शब्द को सुनकर वक्ता के अभिप्राय को नहीं जान सकता। वह चाहता है कि वक्ता दिल्ली के बारे में कुछ कहे और कथन को पूरा करे ताकि उसके अर्थ को जाना जा सके। इसका मतलब यह हुआ कि आकांक्षा का सम्बन्ध श्रोता की मानसिक स्थिति से होता है। कारण यह है कि श्रोता एक अथवा दो शब्दों को सुनकर पूर्ण अर्थ को नहीं जान सकता। वह वक्ता से कुछ और सुनने की अभिलाषा रखता है। वह चाहता है कि वक्ता दिल्ली के बारे में जो कुछ भी कहना चाहता है कहे ताकि श्रोता की इच्छा पूर्ण हो। इसीलिए वक्ता यह कहता है–"दिल्ली में कॉमनवेल्थ खेल होने जा रहे हैं।" वक्ता इस वाक्य को बोलकर अपने अभिप्राय को व्यक्त कर देता है और इसे सुनकर श्रोता की आकांक्षा समाप्त हो जाती है। अतः आकांक्षा वाक्य का एक ऐसा आधार है जिसके बिना पूर्ण अर्थ की प्रतीति नहीं हो सकती।

3. आसक्ति–इसे सन्निधि भी कहते हैं। आसक्ति का अर्थ है–**समीपता।** वाक्य में पद एक-दूसरे के समीप रहने चाहिएं। अर्थात् वाक्य में प्रयुक्त होने वाले पदों में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं होना चाहिए। यह व्यवधान भी दो प्रकार का हो सकता है। एक तो एक पद और दूसरे पद के बीच में कालगत व्यवधान और दूसरा दोनों पदों के बीच में अनुपयुक्त पद का आ जाना। उदाहरण के रूप में यदि कोई एक व्यक्ति प्रातःकाल 'शिक्षक' कहता है। दोपहर को 'कक्षा में' कहता है और 'सायंकाल' में पढ़ा रहा है कहता है तो, उसके मुख से उच्चरित शब्द वाक्य नहीं कहे जा सकते क्योंकि इन शब्दों के बीच में कालगत व्यवधान है। इनके अर्थ में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः वाक्य रचना करने के लिए आसक्ति हमेशा अपेक्षित रहती है।

इसी प्रकार से वाक्य में पदों का उचित क्रम से प्रयोग होना चाहिए। यदि पदों में अनुपयुक्त पद आ जाएंगे तो भी पूर्ण अर्थ की प्रतीति में बाधा उत्पन्न हो जाएगी। एक उदाहरण देखिए–**"साहित्यकार हैं प्रेमचन्द प्रतिभासम्पन्न हिन्दी साहित्य के"** यहाँ पदों का प्रयोग तो हुआ है लेकिन क्रमानुसार नहीं हुआ, अतः इन पदों से हम सही अर्थ को नहीं जान सकते।

"प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं।" यह वाक्य की व्यवस्थित इकाई कही जा सकती है परन्तु ऐसा केवल गद्य में ही होता है पद्य में नहीं। अतः आसक्ति का मतलब हुआ–"वाक्य के पदों का क्रमानुसार उच्चारण करना अथवा लिखना" जिससे कि वे एक-दूसरे के समीप रहें। अतः अभिहितान्वयवाद के अनुसार पदों द्वारा व्यक्त किए गए अर्थ के अन्वय से ही वाक्य के अर्थ की प्रतीति होती है। यही कारण है कि कुमारिल भट्ट ने पद को महत्त्व देते हुए अभिहितान्वयवाद का प्रतिपादन किया और इसे पदवाद भी कहकर पुकारा। यह सिद्धान्त वाक्य की अपेक्षा पदों को अधिक महत्त्व प्रदान करता है। उनका विचार था कि यदि पद और उनके द्वारा व्यक्त अर्थ न हो तो न तो वाक्य बन सकेगा और न ही वाक्य का सही अर्थ निकलेगा।

(ख) अन्विताभिधानवाद–

भाषा में वाक्य को सर्वाधिक महत्त्व देने के कारण अन्विताभिधानवाद सामने आया। पहले बताया जा चुका है कि इस मत का प्रवर्तन आचार्य प्रभाकर ने किया जो कि कुमारिल भट्ट के ही शिष्य थे। वस्तुतः प्रभाकर के मत को इनके गुरु कुमारिल भट्ट के मत की अपेक्षा अधिक महत्त्व मिला। यही कारण है कि इन्हें गुरु का भी गुरु माना गया। इसी आधार पर इसे वाक्यवाद की भी संज्ञा दी गई। प्रभाकर ने भावाभिव्यक्ति में पद की अलग सत्ता नहीं मानी। आधुनिक भाषा वैज्ञानिक भी वाक्यवाद का समर्थन करते हैं। संस्कृत के बहुचर्चित भाषाविद् भर्तृहरि ने वाक्य को महत्त्व देते हुए अपनी रचना "वाक्य पदीय" में लिखा है–

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्वयवा न च।
वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविको न कश्चन।।

Scanned with ACE Scanner

अर्थात् जिस प्रकार वर्णों में अवयव नहीं होते और पदों में वर्ण नहीं होते उसी प्रकार वाक्य में पद नहीं होते। इस कथन के आधार पर वाक्य की सत्ता ही वास्तविक है। शेष वर्ण और पद काल्पनिक हैं। इस सिद्धान्त की उत्पत्ति पूर्ण भावाभिव्यक्ति के आधार पर हुई है क्योंकि भाषा का उद्देश्य भी पूर्ण भावाभिव्यक्ति है। इस तथ्य से सभी लोग सहमत हैं कि पूर्ण भावाभिव्यक्ति वाक्य के द्वारा ही हो सकती है। भाषा की किसी अन्य इकाई से पूर्ण भाव प्रकट नहीं हो सकता। यथा–

'र' (ध्वनि)
'र' (वर्ण या अक्षर)
'राम' (शब्द)
'राम पाठशाला' (दो पद)
'राम पाठशाला जा' (अधूरा वाक्य)
'राम पाठशाला जा रहा' (अधूरा वाक्य)
'राम पाठशाला जा रहा है' (वाक्य)

यहाँ ध्वनि, वर्ण, शब्द, पद और पदों के समूह से पूर्ण अर्थ तब तक प्रकट नहीं होता जब तक 'जा रहा' क्रिया पद की समापिका क्रिया 'है' का प्रयोग नहीं होता। भाव यह है कि समापिका क्रिया 'है' के प्रयोग के बाद ही वाक्य पूर्ण हुआ और हमें पूर्ण अर्थ की प्रतीति हुई। जब हम वाक्य का विभाजन करते हैं तब पद का स्वरूप सामने आता है परन्तु पद में पूर्ण सार्थकता का भाव नहीं होता। वाक्य में विभिन्न पदों की अनुकूल अन्विति अवश्य होनी चाहिए। यह वाक्य की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है।

अन्विताभिधानवाद के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए यह कहा जा सकता है कि भाषा की प्रथम इकाई वाक्य ही है। वाक्य में विभिन्न इकाइयां होती हैं। जैसे–वर्ण, शब्द, अक्षर, पद और वाक्य। इनमें वाक्य ही प्रथम इकाई है। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए हम एक बच्चे का उदाहरण दे सकते हैं। बच्चा जब आरम्भ में भाषा का प्रयोग करता है तो वह वाक्य का ही प्रयोग करता है, हमें लगता है कि वह ध्वनि का उच्चारण कर रहा है परन्तु चिन्तन करने पर हमें समझ आता है कि बच्चे के द्वारा बोला गया एक शब्द भी वाक्य ही है जैसे बच्चा ललचाई आँखों से टॉफी को देखकर बोलता है 'टॉपी' अर्थात् बच्चा कहता है मैं 'टाफी' लूँगा जब बच्चा माँ से कहता है दूधू तो उसका मतलब है माँ मुझे दूध दो। भले ही बच्चा एक शब्द का प्रयोग करता हो परन्तु वह शब्द शब्द न होकर वाक्य ही होता है। हम उसे एक पदीय वाक्य कहते हैं। प्रायः वयस्क लोग भी एक पदीय वाक्य का प्रयोग करते हैं। संवाद के समय जो एकपदीय वाक्य बोले जाते हैं, वे सार्थक ही होते हैं। जैसे–मोहन, क्या तुम कल दिल्ली जा रहे हो?

सोहन – हाँ
मोहन – तुम दिल्ली से कब लौटोगे?
सोहन – मंगलवार।
मोहन – तो मंगलवार मैं तुम्हें मिलने आ जाऊँ।
सोहन – हाँ।

इस संवादात्मक सन्दर्भ में 'हाँ', 'मंगलवार', 'हाँ' ये तीनों ही एक पदीय वाक्य हैं।

आधुनिक भाषा विज्ञान में वाक्य को पूर्ण सार्थक इकाई के रूप में मान्यता मिल चुकी है। इसलिए वाक्य पद की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें दो मत नहीं कि भाषा का उद्देश्य पूर्ण भावाभिव्यक्ति है और यह केवल वाक्य से ही सम्भव है। फिर भी भाषा की सभी इकाइयों का अपना-अपना महत्त्व है। ऊपर हमने जो ध्वनि, वर्ण, अक्षर, शब्द, पद, वाक्य आदि की चर्चा की है इनमें से किसी इकाई की भी अपेक्षा नहीं की जा सकती। इस सन्दर्भ में **डॉ. नरेश मिश्र** ने उचित ही लिखा है–**''ध्वनि यदि भाषा की लघुत्तम इकाई है, तो शब्द की सार्थकता उसकी पहचान है। इसी प्रकार यदि पद व्याकरणिक योग्यता प्राप्त भाषा की प्रमुख इकाई है, तो पूर्ण सार्थकता वाक्य की अपनी पहचान है। वाक्य-रचना में पद की बलवती भूमिका है, तो पूर्ण सार्थकता की दृष्टि से वाक्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई है।''**

निष्कर्ष–उपर्युक्त दोनों बातों का विवेचन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य प्रभाकर गुरु का मत युक्तियुक्त और ग्राह्य है। निश्चय से वाक्य भाषा का चरम अवयव है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी पदवाद की अपेक्षा वाक्यवाद अधिक महत्त्वपूर्ण है। कारण यह है कि वक्ता सोचने की क्रिया वाक्य के रूप में करता है, अलग-अलग पदों के रूप में नहीं। जब व्यक्ति मानव की नश्वरता के बारे में सोचता है तभी उसके मुख से यह निकलता है ''मानव जीवन क्षण भंगुर है।'' इस वाक्य को बोलकर वक्ता

Scanned with ACE Scanner

अर्थ का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–अर्थ : अवधारणा/स्वरूप–अर्थ विज्ञान भाषा विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। अधिकांश विद्वान इस मत से सहमत हैं कि शब्द की आत्मा अर्थ ही है परन्तु अर्थ विज्ञान से पहले अर्थ के स्वरूप को समझना नितान्त आवश्यक है। भाषा भावों तथा विचारों के आदान-प्रदान का एक सशक्त साधन है परन्तु इस साधन का मूल तत्त्व तो अर्थ ही है। अर्थ ही भाषा को जीवन्त बनाता है। मानव जब ध्वनियों के एक निश्चित क्रम को अपनाता है तो शब्द का निर्माण होता है। ये शब्द सार्थक होते हैं और प्रत्येक शब्द एक निश्चित अर्थ को लिए हुए है। यदि वक्ता और श्रोता की भाषा एक ही है तो वे दोनों भाषा के अर्थ को ग्रहण करने में समर्थ हो सकते हैं परन्तु यदि वक्ता और श्रोता में ध्वनि भेद हो तो वक्ता और श्रोता परस्पर विचारों का आदान-प्रदान नहीं कर सकते। अर्थ की परिभाषा देते हुए **डॉ. द्विवेदी शंकर** ने लिखा भी है–**"किसी वस्तु, स्थिति या भाव आदि तथा उसके लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द के बीच की कड़ी ही उस शब्द का अर्थ है।"** जहां भारतीय विद्वान प्रतीति को अर्थ कहते हैं वहाँ पाश्चात्य विद्वान सन्दर्भ या सम्बन्ध को अर्थ मानते हैं। **डॉ. सिरलट** लिखता भी है–**"अर्थ उस व्यक्ति पर आधारित होता है, जो कुछ भाव ग्रहण करना चाहता है। अर्थ के बिना शब्द का अस्तित्व ही संदिग्ध है।"** अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि अर्थ के बिना भाषा का कोई महत्त्व नहीं है। शब्द के उच्चारण से श्रोता को जो प्रतीति होती है उसी को अर्थ कहा जाता है। अतः भाषा का बाह्य रूप शब्द है, आन्तरिक रूप अर्थ है। भाषा का मूल तत्त्व ही अर्थ है। यही कारण है कि भाषा में जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है वे सभी सार्थक होते हैं। भाषा में प्रयुक्त होने वाले प्रत्येक शब्द का कोई न कोई निश्चित अर्थ होता है। शर्त यह है कि वक्ता और श्रोता दोनों को शब्द के उस अर्थ का ज्ञान होना चाहिए। मान लो एक व्यक्ति दुकानदार से जाकर कहता है कि मुझे दसवीं कक्षा की हिन्दी की व्याकरण चाहिए। तब श्रोता के मानसपटल पर दसवीं कक्षा व्याकरण आदि की छवि उभरेगी और वह मुझे दो शब्दों के निहित अर्थ को ग्रहण करके उसे व्याकरण की पुस्तक देगा। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि वक्ता द्वारा उच्चरित तथा श्रोता द्वारा ग्रहित आशय या बोध को ही अर्थ कहा जा सकता है और इसकी प्रतीति केवल मन अथवा मस्तिष्क पर अंकित बिम्ब के रूप में होती है। अतः शब्द यदि भाषा का स्थूल पक्ष है तो अर्थ उसका सूक्ष्म पक्ष है, यदि शब्द भाषा का भौतिक पक्ष है तो अर्थ उसका मानसिक पक्ष है। शब्द के बिना अर्थ तथा अर्थ के बिना शब्द अग्राह्य है।

परन्तु ध्यातव्य है कि व्यक्ति के मन या मस्तिष्क में तभी बिंब अंकित होता है, जब उसने उस वस्तु, व्यक्ति, स्थान आदि के बारे में या तो सुन रखा हो या उसे देख रखा हो। यदि वक्ता या श्रोता इस शर्त को पूरा नहीं करता तो वह उस शब्द में निहित अर्थ को भी ग्रहण नहीं कर सकेगा। उदाहरण के लिए, यदि पांच-छह वर्ष के हिन्दी भाषी बच्चे के सामने 'शब्दकोश', 'साहित्य', 'अलंकार' जैसे शब्दों का उच्चारण किया जाए तो वह इनमें निहित अर्थ को ग्रहण नहीं कर सकेगा। यही कारण है कि

Scanned with ACE Scanner

प्रायः बच्चे किसी भी नए शब्द को सुनते ही पहले उसके बारे में प्रश्न पूछते हैं कि वह क्या होता है। जब उसे उस वस्तु आदि के बारे में बता दिया जाता है, तब वह उस शब्द के अर्थ को ग्रहण करने में सक्षम हो जाता है। उस वस्तु के आकार, रूप, स्वरूप आदि की छवि उसके मस्तिष्क में अंकित हो जाती है और जब वह उस वस्तु के लिए प्रयुक्त शब्द या नाम को दोबारा सुनता है तब स्वतः उसका अर्थ ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार अर्थ प्रतीति के दो रूप हुए–स्व प्रत्यक्ष और पर-प्रत्यक्ष। जिस वस्तु, व्यक्ति, प्राणी आदि से मनुष्य का प्रत्यक्ष सम्पर्क होता है तथा इसके बाद उसके मस्तिष्क में उसकी छवि अंकित हो जाती है, तब वहाँ स्व-प्रत्यक्ष द्वारा अर्थ-प्रतीति होती है। परन्तु प्रत्येक भाषा में अनेक शब्द अमूर्त वस्तुओं, भावों आदि के सम्बन्ध में प्रयुक्त होते हैं। इन वस्तुओं आदि के बारे में केवल दूसरे व्यक्ति या पुस्तक द्वारा प्रदत्त ज्ञान से ही कुछ जाना जा सकता है। जैसे–स्वर्ग, नरक, विदेशों में स्थित प्रसिद्ध वस्तुओं, दृश्यों आदि के बारे में या तो धार्मिक विदेशी-पत्र-पत्रिकाओं आदि के द्वारा जाना जा सकता है या फिर किसी व्यक्ति द्वारा बताने पर। अतः पर-प्रत्यक्ष में व्यक्ति स्वयं तो उन पदार्थों, वस्तुओं आदि को नहीं देखता, परन्तु दूसरों के अनुभवों के आधार पर अपने मन में उनकी छवि बना लेता है। जब वह उन वस्तुओं, सूक्ष्म भावों आदि से सम्बन्धित शब्दों को सुनता है, तब उसके मस्तिष्क में वही छवि उभर आती है तथा वह उस शब्द के अर्थ को ग्रहण कर लेता है। उदाहरण के लिए–युद्ध क्षेत्र जाए बिना ही व्यक्ति पर-प्रत्यक्ष से यह जान लेता है कि वहाँ भीषण मार-काट व नर-संहार होता है। अतः शब्द से होने वाली प्रतीति ही अर्थ कहलाती है।

अर्थ की परिभाषाएं–भारतीय विद्वानों के अनुसार–

1. महर्षि पतंजलि ने अपने ग्रंथ 'महाभाष्य' में अर्थ को इस प्रकार परिभाषित किया है–

''शब्दश्च शब्दाद् बहिर्भूक्त अर्थोऽबहिर्भूतः'' अर्थात् शब्द की अंतरंग शक्ति ही अर्थ है क्योंकि शब्द से शब्द बहिर्भूत होता है और अर्थ अबहिर्भूत (अलग) होता है।''

उन्होंने इस परिभाषा को और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है–''सर्वभावरः स्वेन, भावेन भवन्ति स तेषां भावः। किमेमिग्रथि भावग्रहणैः क्रियते? एकेन शब्दः प्रतिनिर्दिश्यते, द्वाभ्यामर्थः। यदा सर्वे शब्दाः स्वेनार्थेन भवन्ति स तेषामर्थः।''

अर्थात्–**''सभी शब्द अपने-अपने अर्थ का बोध कराते हैं, परन्तु जिस अर्थ के लिए जो शब्द प्रयुक्त होता है, उस शब्द का केवल वही अर्थ होता है।''**

2. भर्तृहरि ने अपने ग्रंथ 'वाक्यपदीय' में अर्थ की परिभाषा देते हुए लिखा है–

यस्मिस्तूच्चरिते शब्दे यथा कोऽर्थः प्रतीयते।
तमाहुरर्थः तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम्।

अर्थात्–**''जिस शब्द के उच्चारण करने पर जिस अर्थ की प्रतीति अर्थात् बोध होता है, वही उस शब्द का अर्थ होता है।''**

आचार्य जयन्त ने 'न्यायमंजरी' में अर्थ की परिभाषा देते हुए कहा, **''योऽर्थः प्रतीयते यस्मात् स तस्यार्थ इति स्मृतः।''**

अर्थात् **जिस शब्द से जिसकी प्रतीति होती है, वही उसका अर्थ है।**

कुमारिल भट्ट ने अपने ग्रंथ 'श्लोक वार्तिक' में लिखा है–

''यत्र योऽन्वेते यं शब्दमर्थस्तस्य भवेदसौ।''

अर्थात्–**जो शब्द के साथ सम्बद्ध रहता है, वही उस शब्द का अर्थ होता है।''**

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार–**''किसी भी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, शब्द आदि) किसी भी इन्द्रिय (प्रमुखतः कान, आंख) से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है, वही अर्थ है।''**

डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार–**''अर्थ एक प्रतीति है जो वक्ता के मन में बोलते समय तथा श्रोता के मन में सुनते समय बिम्ब रूप में अंकित होती है। वक्ता के मुख द्वारा उच्चरित तथा श्रोता के कान से श्रुत ध्वनि रूप शब्द भाषा का स्थूल या भौतिक पक्ष है और उसमें निहित अर्थ भाषा का सूक्ष्म मानसिक पक्ष है।''**

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार–Meaning of Meaning ग्रंथ के अनुसार **डॉ. शिलर** ने कहा है–"What anything means depends on who means it."

अर्थात्–**''किसी वस्तु का अर्थ उसी व्यक्ति पर निर्भर रहता है जिससे वह वस्तु अभिप्रेत होती है।''**

डॉ. रसल के अनुसार–**"A relation constitutes meaning a word not out has meaning but is related to its meaning."**

अर्थात्–**''शब्द के सम्बन्ध विशेष को ही अर्थ कहते हैं, क्योंकि किसी भी शब्द में केवल अर्थ नहीं होता, बल्कि वह अपने अर्थ से सम्बन्द्ध रहता है।''**

एल्फ्रेड सिजविक के शब्दों में–"Meaning depends on consequences and truth depends on meaning." अर्थात्–"अर्थ किसी परिणाम पर निर्भर होता है और सच्चाई अर्थ पर निर्भर होती है।"

The foundations of psychology के लेखक डॉ. जे. एस. मूर के अनुसार– **"Psychologically meaning of context, but logically and metaphysically meaning is much more than psychological context, or to put in the other way round, whatever meaning may be, psychology is concerned with it only so far as it can be represented terms in of contextual imagery."**

अर्थात्–**"मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अर्थ वास्तव में सन्दर्भ का प्रकरण है जबकि तात्विक और तार्किक रूप में अर्थ मनोवैज्ञानिक संदर्भ में कहीं अधिक है अथवा दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अर्थ चाहे कुछ भी हो, मनोविज्ञान उससे वहीं तक सम्बन्धित है जहां तक कि वह सन्दर्भ सम्बन्धी कल्पना की शैली में व्यक्त किया जा सकता है।"**

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय विद्वानों ने अर्थ को 'प्रतीति' के रूप में स्वीकार किया है जबकि पाश्चात्य विद्वानों ने उसे 'प्रकरण' व 'सम्बन्ध' के रूप में ग्रहण किया है। अतः अर्थ को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–

"शब्द की वह आन्तरिक व अमूर्त शक्ति, जो उसके (शब्द के) उच्चरित होते ही उस व्यक्ति, वस्तु, भाव आदि का बोध करा देती है, जिसके सम्बन्ध वह (शब्द) प्रयुक्त किया गया था–उसे अर्थ कहते हैं।"

महाकवि कालिदास ने शब्द और अर्थ की तुलना शिव-पार्वती के साथ की है। यही नहीं अर्थ को शब्द की आत्मा भी कहा गया है। जब हम अर्थ के विषय में विचार करते हैं तो यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है कि क्या शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य है या अनित्य अर्थात् नैसर्गिक या मानवकृत है। यदि शब्द का अर्थ मानवकृत होता तो समूचे विश्व की व्यवस्था एक ही होती। हम हिन्दी का एक शब्द ले सकते हैं–रोग। अंग्रेजी में इसे Disease कहते हैं परन्तु अंग्रेजी में Rouge 'धूर्त' के लिए प्रयुक्त होता है परन्तु शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य न होकर अनित्य है। शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को समझने के लिए हमें भाषा की निम्नलिखित परिभाषा पर विचार करना होगा।

भाषा मानव द्वारा उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज के लोग परस्पर अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि आरम्भ में अर्थों के लिए शब्दों का निर्माण समाज के कुछ बुद्धिमान लोगों द्वारा स्वेच्छा से किया गया। बाद में यह शब्द निर्धारण एक परम्परा बन गया। आधुनिक युग में भी असंख्य नवीन शब्दों का निर्धारण हो रहा है। जैसे–आकाशवाणी, दूरदर्शन, भूमंडलीकरण, कैंसर, सर्वोदय, आरक्षण, एड्स, मलेरिया, अस्तित्ववाद, समाजवाद, पूंजीवाद आदि शब्द एक बार प्रचलित होने के बाद अब पारम्परिक रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। यही बात व्यक्तियों के नामकरण पर भी लागू होती है। पैदा होते ही बच्चे का जो नाम रख दिया जाता है आजीवन वही नाम चलता रहता है। इसी प्रकार विभिन्न वस्तुओं, भावों, विचारों, क्रियाओं तथा विशेषताओं के लिए शब्दों का निर्धारण यादृच्छिकता के आधार पर किया गया है। जैसे–हम कहते हैं कि कौआ आकाश में उड़ता है। यह कहते ही कौए की उड़ान का दृश्य हमारे मन पर अंकित हो जाता है। इस सन्दर्भ में **आचार्य किशोरी दास वाजपेयी** ने लिखा भी है–**"विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति सरलता से प्रकट करते हैं।"**

◆◆◆

---

2. शब्द एवं अर्थ के संबंध पर प्रकाश डालिए। ***(Most Imp.)***

अथवा

शब्द एवं अर्थ संबंध की विवेचना कीजिए।

उत्तर–शब्द एवं अर्थ संबंध–शब्द एवं अर्थ का संबंध नित्य है। अर्थ के अभाव में शब्द निरर्थक हो जाता है। शब्द और अर्थ में वही सम्बन्ध है जो शरीर व आत्मा में होता है। शरीर स्थूल व भौतिक है। अतः दिखाई देता है, परन्तु आत्मा सूक्ष्म व अमूर्त है, अतः दिखाई नहीं देती। इसी प्रकार शब्द भी स्थूल, भौतिक होने के कारण दृश्यमान है परन्तु अर्थ सूक्ष्म, अमूर्त होने के कारण अदृश्य है। अतः शब्द रूपी शरीर की आत्मा अर्थ ही है। अनेक विद्वानों एवं, महापुरुषों ने शब्द एवं अर्थ के संबंध को अपने-अपने ढंग से दर्शाया है यथा–

Scanned with ACE Scanner

आचार्य पतंजलि के अनुसार–

"अर्थ गत्यर्थः शब्द प्रयोगः। नित्यौ ह्यर्थवता मथैरभि संबंध।"

अर्थात्–शब्द का प्रयोग अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए होता है अर्थ शब्द से अपृथक व सम्पृथक रहता है। इसीलिए दोनों में नित्य संबंध रहता है।

आचार्य भर्तृहरि के अनुसार–

"एकस्येत्रात्मनो भेदौ शब्दार्था व पृथकस्थितौ।"

अर्थात्–"शब्द और अर्थ दोनों ही एक आत्मा के रूप हैं। दोनों एक-दूसरे से पूर्णतया अपृथक् और अभिन्नहैं।"

महाकवि कालिदास के अनुसार–'रघुवंश' में अर्थ व शब्द के सम्बन्ध को शिव व पार्वती के युगल रूप के समान अभिन्न बताया है यथा–

"वागर्थविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।"

गोस्वामी तुलसीदास ने शब्द और अर्थ को उसकी तरंग के सादृश्य माना है। वे कहते हैं–

"जल-विचि सम, कहियत भिन्न अभिन्न।"

डॉ. नरेश मिश्र ने अपनी पुस्तक 'भाषा विज्ञान' तथा 'मानक हिन्दी' में शब्द तथा अर्थ के सम्बन्ध में लिखा है–"शब्द-अर्थ पर सूक्ष्म चिन्तन करने से यह ज्ञात होता है कि शब्द के द्वारा पहले उसका निजी भाषाई स्वरूप प्रकट होता है और उसके पश्चात् उसका अर्थ बोध होता है। इस प्रकार शब्द और अर्थ का अभिन्न सम्बन्ध स्पष्ट होता है। यहां पर यह ज्ञातव्य है कि 'कलम' कहने से 'कागज', 'पुस्तक' या अन्य किसी वस्तु का बोध नहीं होता। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि प्रत्येक शब्द से विशिष्ट अर्थ की प्रतीति होती है। यही कारण है कि वक्ता और श्रोता प्रायः एक शब्द से एक ही अर्थ ग्रहण करते हैं। शब्दों का अर्थ जनसामान्य द्वारा स्वीकृत होता है। यदि जनसामान्य द्वारा 'फूल' या अन्य किसी शब्द का भिन्न कोई अर्थ मान लिया जाए, तो वही अर्थ प्रकट होगा।"

शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने चार वादों की चर्चा की है। जिनका विवेचन इस प्रकार है–

1. उत्पत्तिवाद–इसका अभिप्रायः यह है कि शब्द और अर्थ का परस्पर सम्बन्ध उत्पादक-उत्पादय का है। शब्द उत्पादक है और अर्थ उत्पादय है। इसका मतलब यह हुआ कि अर्थ की सृष्टि पहले ही होती है और उस अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए सांकेतिक शब्द की रचना बाद में होती है। शब्द के प्रयोग से हम अर्थ की अभिव्यक्ति कर पाते हैं।

इसका अर्थ है कि धीर ऋषियों ने मन से वाणी को रचा। यहां मन का अर्थ है–मानसिक अर्थ या विचार जो पहले मनुष्य के मन में उत्पन्न होते हैं। वाणी का अर्थ है–शब्दों के द्वारा भावों या विचारों को अभिव्यक्त करना। इसका मतलब यह हुआ है कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध प्रकाशक और प्रकाश्य तथा व्यंजक-व्यंग्य है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि अर्थ की स्थिति पहले होती है तथा बाद में शब्द का प्रयोग किया जाता है।

2. ज्ञप्तिवाद–शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाला यह दूसरा मत है। इसका यह अर्थ है कि शब्द अर्थ की ज्ञप्ति करता है, वह अर्थ को बताता है इसलिए शब्द और अर्थ में ज्ञापक-ज्ञाप्य सम्बन्ध होता है। ज्ञाप्य का अर्थ है बताया जाने वाला तथा ज्ञापक का अर्थ है बताने वाला। अर्थ यदि ज्ञाप्य है तो शब्द ज्ञापक। कहने का भाव यह है कि अर्थ की ज्ञप्ति, प्रतीति शब्द के द्वारा होती है। शब्द, अर्थ की ज्ञप्ति उसी प्रकार कराता है जिस प्रकार ऊष्णता सूर्य की और दाहकता अग्नि की ज्ञप्ति कराते हैं। वाजसनेयी प्रतिशाख्य के अनुसार–"जिसमें अर्थ का गमन अर्थात् ज्ञान होता है, उसे पद कहा जाता है।"

"पद्यते गम्यते ज्ञायते अनेनार्थ इति पदम्।"

3. अभिव्यक्तिवाद–इस वाद के अनुसार शब्द से अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। शब्द व्यंजक है और अर्थ व्यंग्य है। अतः दोनों में व्यंग्य-व्यंजक सम्बन्ध होता है। महर्षि पतंजलि ने इस मत का परिवर्तन किया। अपनी रचना 'महाभाष्य' में वे लिखते हैं–"शब्द वह है जो कान से सुना जाता है, बुद्धि से ग्रहण किया जाता है। आकाश जिसका स्थान है जो प्रयोग से अभिव्यक्त होता है।"

महाभाष्यकार पतंजलि ने प्रयोग से अभिज्वलित शब्दों द्वारा इस तथ्य को प्रकट किया है कि शब्द ही अर्थ को अभिज्वलित करता है, अभिव्यक्त करता है। अतः अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, उत्पत्ति नहीं होती।

4. प्रतीकवाद–इस मत के प्रवर्तक तथा प्रसिद्ध विद्वान भर्तृहरि ने लिखा है–

"ज्ञान प्रयोक्तुर्बाह्योऽर्थ स्वरूपं च प्रतीयते।
शब्दै रुच्चारितैस्तेणां सम्बन्ध समवस्थितः।"

Scanned with ACE Scanner

अथवा

भाषा-विज्ञान का अन्य शास्त्रों से क्या संबंध है? विस्तार से लिखिए।

उत्तर–भाषा-विज्ञान एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों का संबंध–चूँकि समग्र ज्ञान भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है और भाषा ही समस्त वाङ्मय को प्रकट और संप्रेषणीय रूप देती है। इसी कारण अनेक समाज विज्ञान एवं शास्त्र किसी न किसी रूप में भाषा-विज्ञान से जुड़े हैं। इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है, "भाषा अपने विराटतम रूप में अखण्ड है। तत्त्वतः उसे अलग-अलग शास्त्रों तथा विज्ञानों आदि में इस प्रकार नहीं विभाजित किया जा सकता कि वे एक-दूसरे से पूर्णतः अलग हों। व्यावहारिक दृष्टि से मनुष्य ने अपनी ज्ञान की सीमा और अध्ययन विश्लेषण की सुविधा के अनुसार अखंड ज्ञान क्षेत्र को कुछ विभागों में बांट रखा है। जिसको उसने अलग-अलग विज्ञानों एवं शास्त्रों आदि की संज्ञा दी है। इन ज्ञानों-विज्ञानों एवं शास्त्रों में कुछ तो सामान्य और व्यावहारिक धरातल पर एक-दूसरे से सम्बद्ध नहीं कहे जा सकते। जैसे साहित्य और गणित, रसायनशास्त्र और भाषा-विज्ञान वनस्पति विज्ञान और दर्शन। दूसरी ओर ज्ञान के ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जो एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। यह संबंध कई प्रकार का है। उदाहरण के लिए कुछ तो एक-दूसरे से सामान्य संबंध रखते हैं। कुछ एक-दूसरे से पूरक जैसे होते हैं और कुछ का तो आपस में ऐसा सम्बन्ध होता है कि एक की जानकारी के बिना दूसरे का अध्ययन प्रायः असंभव हैं। दोनों अन्योन्याश्रित होते हैं। भाषा-विज्ञान से भी अनेक ज्ञानों, विज्ञानों एवं शास्त्रों के विभिन्न प्रकार के संबंध हैं।" निम्नलिखित उप विभाजनों में कुछ प्रमुख शास्त्रों के साथ भाषा-विज्ञान के संबंध को स्पष्ट किया जा रहा है।

1. **भाषा-विज्ञान तथा व्याकरण**–भाषा-विज्ञान तथा व्याकरण - व्याकरण शब्द विधा + उपसर्ग एवं कृ धातु में अन् (ल्युट) प्रत्यय जोड़कर बना है। जिसका अर्थ विश्लेषण अथवा खण्ड करना है। व्याकरण का काम भाषा के अंगों के विच्छेदन द्वारा उनके सही स्वरूप को समझाना है। संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में हुआ है। इसके अंतर्गत ध्वनियों का उच्चारण, संज्ञा सर्वनाम, विश्लेषण वर्ग के शब्दों में सुप् विभक्तियों युक्त कर करने वाले पदों की सिद्धि, क्रिया के विभिन्न गणों और लकारों के रूप, तद्धित और कृदन्त शब्दों के निर्माण की प्रक्रिया, रई प्रत्यय और उनसे निर्मित होने वाले शब्द आदि अनेक विषय आ जाते हैं। पाणिनी रचित **अष्टाध्यायी कौमुदी,** कात्यायन की व्याख्याएँ एवं पतंजलि के **महाभाष्य** आदि में इन्हीं विषयों का अध्ययन है। भर्तृहरि ने अपने **'वाक्यपदीय'** में वाक्यों और पदों के अन्तःसंबंध को समझाया है और भाषा के महत्त्व को प्रतिष्ठित किया है। वस्तुतः व्याकरण भाषा के सम्यक् और निर्दोष प्रयोग का ज्ञान कराता है। व्याकरण भले ही व्याकरणीय नियमों का स्रष्टा न हो किन्तु उन्हें करने वाला अनुचर जरूर है। भाषा में निरंतर बदलाव उसकी सहज प्रवृति है जिस पर व्याकरण रोक लगाना चाहता है। इस प्रकार भाषा की केन्द्रापगामी और केन्द्राभिगामी प्रवृत्तियों में द्वन्द्व चलता रहता है। जिसमें परिवर्तनशीलता की ही विजय होती है। लेकिन व्याकरण की यथास्थितिवादी भूमिका परिवर्तन की गति का नियमन करती है जिससे परिवर्तन अराजक नहीं हो पाता और उसकी गति धीमी हो जाती है। यदि यह व्यवस्था न होती तो भाषा इतनी तेजी से बदलती कि नई पीढ़ी अपनी ठीक पहले की पीढ़ी की भाषा भी न समझ पाती।

व्याकरण का बहुत सशक्त होना भी भाषा के विकास के लिए सुखद नहीं। पाणिनी ने संस्कृत को व्याकरणिक नियमों में बांधा जिससे वैदिक भाषा के रूप वैविध्य पर अंकुश लगा। भाषा अधिक सुव्यवस्थित हुई लेकिन इस अंकुश ने उसके सहज विकास की राह रोक दी जिससे कालान्तर में वह मृत भाषाओं में गिनी जाने लगी, दूसरी ओर पालि, प्राकृत आदि लोक भाषाएँ सतत् विकसित होती हुई भारतीय आर्य भाषाओं के वर्तमान स्वरूप तक पहुँच गई।

भाषा-विज्ञान और व्याकरण की तुलना करते हुए स्पष्ट होता है कि दोनों का अध्ययन क्षेत्र एक ही है। ध्वनि, पद और वाक्य पर दोनों विचार करते हैं। व्याकरण में जिसे वर्ण-विचार, शब्द विचार और वाक्य विचार कहा जाता है, उसे ही भाषा-विज्ञान में क्रमशः ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान कहते हैं। लेकिन उनमें एक बड़ा अंतर यह है कि भाषा-विज्ञान इन अंगों के विकास और इतिहास का अध्ययन करता है, विकास और परिवर्तन के कारणों की खोज करता है और उनकी वर्तमान स्थिति का विवेचन करता है वहीं व्याकरण का इतिहास और विश्लेषण से कोई लेना-देना नहीं। वह एककालिक विज्ञान है और किसी भाषा

Scanned with ACE Scanner

के केवल तत्कालीन स्वरूप से संबंध रखता है। यही कारण है कि संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के व्याकरण अपनी-अपनी भाषाओं तक ही सीमित है एक ही भाषा के विकास के तीन सोपान होते हुए भी उनमें कोई पारस्परिक भी होता है, स्थान की दृष्टि से भी वह एक ही भाषा तक सीमित रहता है, अन्य भाषाओं से उसका संबंध नहीं के बराबर होता है, उदाहरण के लिए लिंग व्यवस्था पर विचार करते हुए हिन्दी का व्याकरण केवल इतना ही बतायेगा कि हिन्दी में केवल दो ही लिंग है वह स्रोत भाषा संस्कृत के तीन लिंगों की चर्चा नहीं करेगा और न अन्य भारतीय भाषाओं, गुजराती, मराठी में स्थित तीन लिंगों की बात करेगा। व्याकरण वर्णात्मक विज्ञान शुद्धता पर अधिक ध्यान देता है। व्याकरण वह शास्त्र है जिसमें बोलचाल तथा साहित्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा का स्वरूप उसके गठन उसके अवयवों, उसके प्रकारों और पारस्परिक संबंधों तथा उसके रचना विधान और रूप परिवर्तन का विचार होता है। शुद्धता विज्ञान की प्राथमिक शर्त है। वक्ता के द्वारा भाषा का गलत प्रयोग न केवल हास्यास्पद होता है अपितु उससे कई बार संप्रेषण में भी बाधा आती है। भाषा-विज्ञान व्याकरण को बुनियाद बनाकर अपना अध्ययन आगे बढ़ाता हैं। इस रूप में दोनों में अन्योन्यश्रित संबंध है।

2. भाषा-विज्ञान और दर्शनशास्त्र–भाषा-विज्ञान और दर्शनशास्त्र के बीच भी गहरा संबंध है। विशेषकर भाषा-विज्ञान के एक अंग अर्थ विज्ञान से दर्शन का घनिष्ठ रिश्ता है। दुनिया के प्रायः सभी देशों में दार्शनिकों द्वारा ही शब्द और अर्थ के चिंतन का कार्य शुरू किया गया। शबद के स्वरूप अर्थ की अवधारणा, शब्द और अर्थ के मध्य संबंध, शब्द शक्तियों का रूप और उनकी संख्या अथवा भेद, पद और वाक्य में से भाषा का मूल तत्त्व किसे मानेंगे? इन सभी प्रश्नों के बारे में सोचना, समझना सर्वप्रथम दार्शनिकों ने ही शुरू किया चाहे वे भारत के रहे हो अथवा यूरोप के। हमारे देश में सबसे पहले वैदिक वाङ्मय में भाषा विषयक विश्लेषण प्राप्त होता है। इसका विकास भर्तृहरि के **'वाक्यपदीय'** में मिलता है। वैयाकरणों में स्फोटवाद नैयायिकों के जातिवाद और बौद्धों के अपोहवाद आदि सिद्धांतों का आधार दर्शन ही है। यूनानी दार्शनिकों ने भी भाषा विषयक विश्लेषण किए। कुछ भाषाविद् तो भाषा-विज्ञान के प्रमुख अंग अर्थ विज्ञान को भाषा-विज्ञान की अपेक्षा दर्शनशास्त्र में स्थान देना अधिक औचित्यपूर्ण दिखाना चाहते हैं। दर्शन की तर्क पद्धति भी भाषा-विज्ञान से जुड़ी है। तर्क का प्रमुख नियम कारण-कार्य भाव भाषा-विज्ञान की समस्याओं के निराकरण में सहायक होता है। भाषा में बदलाव अर्थ में बदलाव, वाक्य विन्यास आदि में बदलाव आदि के कारण को जानने की उत्सुकता तर्कशास्त्र के आधार पर ही होती है। इसी तर्कशास्त्रीय प्रवृत्ति के कारण भाषा की उत्पत्ति, विकास, ध्वनि परिवर्तन आदि के कारणों की खोज की जाती है। तर्कशास्त्र की अन्वय-व्यतिरेक पद्धति भाषा-विज्ञान के लिए भी यथेष्ट उपयोगी हैं।

3. भाषा-विज्ञान तथा साहित्य–साहित्य भाषा की अमूल्य सम्पत्ति है। भाषा ने अपने ऐतिहासिक विकास में जो कुछ अर्जित किया है वह भाषा के साहित्य में ही सुरक्षित और संरक्षित रहता है। साहित्य को किसी भी भाषा की धरोहर कह सकते हैं। जिससे भाषा की समृद्धि का बोध होता है। भाषा-विज्ञान साहित्य की इस सामग्री का इस्तेमाल करता है। भाषाओं के ऐतिहासिक परिचय के साथ उनके विकास को समझने और समझाने में भी साहित्य से मदद मिलती है। जिन भाषाओं में साहित्य लिखा गया है उनहें प्रतिष्ठित माना जाता है। साहित्य के जरिए भाषा का कालक्रमानुसार विकास दिखलाया जा सकता है। भाषा के विभिन्न भौगोलिक रूप भी इस माध्यम से पहचाने जा सकते हैं। यदि व्याकरण और भाषा-विज्ञान के संबंध को अगली भाव संबंध कहा जाए तो भाषा विज्ञान और साहित्य का सम्बन्ध उपकार्य-उपकारक संबंध है। साहित्य और भाषा-विज्ञान एक-दूसरे के उपकारक है। साहित्य भाषा के प्राचीन रूपों को सुरक्षित रखकर भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लिए उपयोगी सामग्री जुटाता है। इस प्रकार साहित्य भाषा-विज्ञान का उपकारक है। दूसरी ओर भाषा-विज्ञान भी साहित्य का उपकारी है। साहित्य के अनेक अस्पष्ट और दुर्बोध शब्दों का इतिहास भाषा-विज्ञान की मदद बिना नहीं ज्ञात किया जा सकता। वेद के हजारों शब्दों का अर्थ निर्णय भाषा-विज्ञान की सहायता से ही हो पाया है। भाषा विद्वान द्वारा ही एक भाषा का विद्वान अनेक भाषाओं से जुड़कर विभिन्न भाषाओं के साहित्य की जानकारी प्राप्त करता है और बहुभाषाविद् बन जाता है। तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का आधार भी विभिन्न भाषाओं का साहित्य ही है।

4. भाषा-विज्ञान तथा समाज विज्ञान–आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। सामाजिक बदलाव के साथ ही भाषा में भी बदलाव आता है और उसका विकास होता है। समाज विज्ञान मनुष्य के आचार-विचार, आहार व्यवहार, सोच-समझ, आदि का अध्ययन करता है। भाषा में रीति रिवाज, शिष्टाचार, आचार-व्यवहार के सैकड़ों शब्द होते हैं जिनकी व्याख्या समाज विज्ञान के ज्ञान से ही आसानी से की जा सकती है। समाज विज्ञान की सहायता से ही यह बताया जा सकता है कि कैसे विकास का ह्रास के कारण शब्दों के रूप बदले और उनके अर्थ में परिवर्तन आया। योग्यता वाचक त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि शब्दों का जातिवाचक में बदल जाना इसका प्रमाण हैं।

Scanned with ACE Scanner

आज भाषा विज्ञान और समाज विज्ञान के घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण ही भाषा-विज्ञान की एक शाखा को विकास के नए क्षितिज छू रही है। समाज भाषा-विज्ञान की संकल्पना का आधार यह मानता है कि सामाजिक संदर्भों से कट कर भाषा का अध्ययन नहीं हो सकता। जहाँ परपंरागत भाषा-विज्ञान भाषा को वाक्यों का समूह मानता है। वाक्य पदों के संयोग से बनते हैं, पद शब्द और प्रत्यय आदि के संयोग से तथा शब्द ध्वनियों के संयोग से। परन्तु इतना मानना ही काफी नहीं बल्कि एक प्राणधारी प्राणी भी है। उसी तरह भाषा ध्वनियों, पदों और वाक्यों का समूह भर नहीं अपितु समाज मानस की अभिव्यक्ति है। भाषा के द्वारा हम केवल अपने भाव या विचार ही अभिव्यक्त नहीं करते अपितु अपने सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को साकार करते हैं। हर संस्कृति के वैशिष्ट्य को वहाँ की भाषा संप्रेषित करती है। समाज भाषा-विज्ञान अप-भाषा और सुसंस्कृत भाषा के अंतर को भी स्पष्ट करता है। यह कूट भाषा कृत्रिम भाषा मिश्रित भाषा जैसे भाषा के विभिन्न भेदों का भी अध्ययन करता है। संप्रेषण प्रक्रिया में बहुभाषिकता का प्रश्न भाषा सम्मिश्रण और भाषा प्रदूषण के प्रश्नों को भी स्पर्श करता है। पश्चिमी विद्वान ने सस्यूर ने भाषा के अध्ययन में एक नया अध्याय जोड़ा भाषा को सामाजिक वस्तु बताते हुए वाणी को उसका व्यक्त और वैयक्तिक रूप कहा। बोआज ने भाषा का संप्रेषण के माध्यम से कहीं बढ़कर माना और समाज तथा संस्कृति को संवाहिका बतलाया। भारत में भी समाज भाषा-विज्ञान उपेक्षित नहीं रहा। डॉ. रामनिवास शर्मा ने भी 'भाषा और समाज' ग्रंथ लिखकर इस क्षेत्र को समृद्ध किया।

5. भाषा-विज्ञान तथा अनुवाद विज्ञान–इन दोनों के अंतरंग संबंध को तो इस छोटी सी बात से ही समझा जा सकता है कि अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान की संज्ञा दी जाती है। इस रूप में तो अनुवाद भाषा-विज्ञान का ही प्रयोगात्मक या व्यावहारिक रूप है।

चूँकि अनुवाद एक भाषिक प्रक्रिया है फलतः भाषा ही नहीं भाषा-विज्ञान से भी इसका गहरा लगाव है। भाषा के कई स्तर जैसे ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य आदि होते हैं जिनका सम्मेलन हमारे सामने भाषा के सुगठित रूप को प्रस्तुत करता है। इन सभी स्तरों का अध्ययन आप भाषा-विज्ञान खंड की संबंद्ध इकाईयों में कर चुके हैं। यहाँ आपके समक्ष स्पष्ट होना चाहिए कि अनुवाद की प्रक्रिया इन सभी स्तरों को समेटती है और अनुवाद के क्रम में इन सभी स्तरों के प्रति सावधानी बनाए रखना जरूरी है। इसके अतिरिक्त इन विविध स्तरों पर स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा की प्रकृति एवं संरचनागत प्रार्थक्य की अधिकारिक जानकारी भी अनुवादक के लिए अनिवार्य होती है। प्रत्येक भाषा की अपनी खास ध्वनियाँ एवं ध्वनि व्यवस्था होती हैं, उनका अपना शब्द भण्डार होता है, रूप व्यवस्था अर्थात् पदों के लिंग, वचन, पुरूष, कारक व्यवस्था क्रिया के काव्य, पक्ष विधि, अन्विति आदि की व्यवस्था भी भिन्न होती है। कई बार समान प्रतीत होने वाली वाक्य संरचनाओं के निहितार्थ भी दो भाषाओं में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इन विविध स्तरों पर दो भाषाओं की प्रकृति, संरचना, शैली आदि में जो अंतर होते हैं, वे समान प्रतीत होने वाले प्रसंगों में भी अलग-अलग अर्थ भर देते हैं। अनुवाद में भाषांतरण तो होता है किन्तु अर्थ की रक्षा करना अपरिहार्य रहता है। इस प्रकार अनुवादक को स्रोत तथा लक्ष्य भाषा की प्रकृति, संरचना विविध भाषिक तथा व्याकरणिक स्तरों, विभिन्न शैलियों तथा इन तमाम पक्षों से जुड़ी अर्थ व्यंजनाओं का पूरा ज्ञान होना चाहिए। इसे लक्ष्य करते हुए ही कैटफोर्ड, नाइडा, न्यूयार्क आदि भाषा वैज्ञानिकों ने अनुवाद के अध्ययन की भाषा वैज्ञानिक दृष्टि विकसित की। नीचे संक्षेप में भाषा-विज्ञान के विविध घटकों से अनुवाद के संबंध को स्पष्ट किया जा रहा है।

(i) अनुवाद और ध्वनि विज्ञान–ध्वनि की विशेषता आप पहले ही पढ़ चुके हैं और आप अवगत हो चुके हैं कि ध्वनि तथा उच्चारण से ही भाषा की वर्तनी व्यवस्था भी जुड़ी होती है। ध्वनियों के संयोजन से ही शब्द बनते हैं, जो पदों के रूप में वाक्यों में प्रयुक्त होते हैं। वाक्य प्रोक्ति का आधार होते हैं और प्रोक्ति ही भाषा के मुख्य प्रकार्य कथ्य का संप्रेषण सम्पन्न करती है। यदि अनुवादक को स्रोत भाषा की ध्वनि व्यवस्था और उस भाषा की लिपि तथा ध्वनि का समुचित ज्ञान न हो तो अनुवाद में बड़ी हास्यास्पद भूले होने की संभावना रहती है। इस ज्ञान को प्राप्त करने में ध्वनि विज्ञान बहुत सहायक होता है।

(ii) अनुवाद और शब्द विज्ञान–किसी भाषा की ध्वनियों के सार्थक समुच्चय शब्द कहलाते हैं। भाषा के लक्ष्यार्थ के संप्रेक्षण और अर्थ वहन के कार्य को शब्द ही करते हैं। अनुवाद मूलतः एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों का दूसरी भाषा के शाब्दिक प्रतीकों में प्रतिस्थापन है। शब्दों के अमिधा लक्षणा अथवा व्यंजना भेद और व्याकरणिक कोटि को देखकर ही शब्दों का अर्थ निर्धारण होता है। सही अनुवाद के लिए शब्द के सही और सटीक रूप की जानकारी अपरिहार्य है। पारिभाषिक शब्दों के अनुसार भी शब्द विज्ञान की जानकारी से मदद मिलती है, किसी भाषा के शब्द भंडार में बोलियों के शब्दों को चिन्हित करना और उनका सार्थक अनुवाद करना भी शब्द विज्ञान के ज्ञान से ही संभव हो पाता है।

Scanned with ACE Scanner

(iii) अनुवाद और रूप विज्ञान–कथ्य का संप्रेषण भाषा के रूप-विन्यास पर निर्भर होता है, इसलिये अनुवादक को स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा दोनों ही रूप-रचना के नियम चूंकि तमाम व्याकरणिक कोटियों पर लागू होते हैं इसलिये इनका क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। संज्ञा और सर्वनाम के कारकीय रूपों की रचना, संज्ञा, सर्वनाम तथा विश्लेषण तथा क्रिया के लिंग-वचन आदि का बोधन, कृदन्तों की रचना, उपसर्ग प्रत्यय आदि के योग से शब्दों के व्याकरणिक कोटि में परिवर्तन, समास रचना आदि सभी क्रियाओं एवं प्रति क्रियाओं के अध्ययन के उपरांत ही कोई श्रेष्ठ अनुवादक बन सकता है।

अनुवाद और वाक्य विज्ञान–वाक्य अर्थ संप्रेषण की इकाई है जिसकी रचना रूप बद्ध शब्दों के संयोजन से होती है, वाक्य विज्ञान के अंतर्गत सामान्य रूप से भी और भाषा विशेष के संदर्भ में भी वाक्य रचना और इसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है। वाक्य विज्ञान की जानकारी भाषा के सही स्वरूप को समझने के लिए बहुत जरूरी है क्योंकि भिन्न-भिन्न अर्थों के संप्रेषण के लिये भाषा में भिन्न-भिन्न प्रकार की वाक्य रचनाओं का प्रयोग किया जाता है। वाक्य संरचनाओं के सूक्ष्म अंतर को समझने के लिए वाक्य विन्यास का गहन अध्ययन जरूरी है। किसी भी भाषा के वाक्य में पदो के के व्याकरणिक संबंध तय रहते हैं बिना इसे समझे ठीक-ठीक भाषांतरण लगभग असंभव ही है।

(iv) अनुवाद और अर्थ विज्ञान–भाषा का कार्य अर्थ संप्रेषण है। अर्थ विज्ञान में भाषा के अर्थ पक्ष का ही अध्ययन किया जाता है। कभी-कभी शब्दों का सीधा अर्थ अनुवाद को गलत कर देता है। संदर्भ के अनुसार इसके लक्षणात्मक और व्यंजनात्मक अर्थों को ध्यान में रखकर ही सही अनुवाद किया जा सकता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के एक शब्द के कई अर्थ होते हैं यदि अनुवादक शब्द कोष से अभिधात्मक अर्थ लेकर अनुवाद कर दे और अर्थ संदर्भ को ध्यान में न रखे तो अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। खासकर लोकोक्तियों मुहावरों और सूक्ति के अनुवाद में अर्थ विज्ञान की मदद बिना सफलता प्राप्त करना मुश्किल है।

(v) अनुवाद और शैली विज्ञान–शैली का संबंध मूल रूप में भाषा से है, इसलिए भाषा का हर स्तर इसके निर्धारण में सहायक हो सकता है। संदर्भ के अनुसार या विशेष संदर्भों में, विशेष ध्वनियों, शब्दों, रूपों या वाक्य विन्यास का प्रयोग यहाँ तक तक कि लिपि की विचित्रताएँ भी कथ्य को प्रस्तुत करने की शैली को रूप दे सकती है। उदाहरण के लिए रेणु की रचनाओं का अनुवाद यदि सीधे-सपाट वर्णात्मक गद्य में कर दिया जाए तो केवल रचनाओं में वर्णित घटनाओं के सामान्य सूत्र ही मिल पायेंगे उसका संपूर्ण संश्लिष्ट प्रभाव नहीं आ पायेगा। प्रेमचंद की रचनाएं यदि क्लिष्ट संस्कृत में भांषातरित की गई तो न केवल लेखक की शैली की सादगी खंडित होगी बल्कि इस शैली से अभिहित कथ्य भी खंडित हो जायेगा। शैली का तमाम व्यापार भाषा से जुड़ा है और अनुवाद भी भाषिक प्रक्रिया ही है। अनुवाद का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और जो कुछ भी अनूदित होता है उसकी अपनी शैली होती है इसलिये अनुवादक को शैली विज्ञान के नियमों तथा प्रविधियों की ठीक-ठीक जानकारी होनी चाहिए जिससे वह स्रोत भाषा की सामग्री के अर्थ को सही-सही समझ कर संगतयुक्तियों के माध्यम से उस अर्थ को लक्ष्य भाषा में यथा संभव पूर्व रूप से संप्रेषित कर सके।

(vi) भाषा-विज्ञान और मनोविज्ञान–भाषा-विज्ञान की एक प्रमुख और स्वतंत्र शाखा अर्थ विज्ञान है जिसका स्वरूप सही एवं सटीक ढंग से समझने में मनोविज्ञान यथेष्ट सहायक है। मनुष्य के समस्त प्रयोजन और आशाएं आकांक्षाएं भाषा में प्रतिभाषित होती हैं। व्यक्ति चिंतन, व्यक्ति की मानसिक समस्याएँ तथा उसका साधारण अथवा असाधारण व्यक्तित्त्व भाषा में ही प्रस्फुटित होता है। इसके माध्यम से भाषा में पाए जाने वाले शब्दों के अर्थों के आयाम बदलते रहते हैं।

शब्दकोश से अलग, शब्द के गढ़ अर्थ भी होते हैं। इन अर्थों का पता लगाना मनोविज्ञान का काम है। मनोविज्ञान की सहायता से भाषा के आंतरिक स्वरूप का विश्लेषण किया जा सकता है। वर्तमान समय में मनोभाषा-विज्ञान के रूप में भाषा-विज्ञान की एक स्वतंत्र शाखा अध्ययन की विधा बन चुकी है। मानसिक व्याधियों के निदान मानसिक गुत्थियों को सुलझाने आदि में मनोचिकित्सक भी इस विधा से उपकृत हो रहे हैं।

(vii) भाषा-विज्ञान और इतिहास–आमतौर पर इतिहास कहने से राजनैतिक इतिहास अर्थ ही लिया जाता है लेकिन सच्चे आशय में हर वस्तु, हर शब्द, हर भाषा और अन्यान्य सभी विषयों का इतिहास होता है। इतिहास बोध के आधार पर हम जिस किसी का इतिहास पढ़कर उस विषय को ठीक से जाँचने और परखने में समर्थ होते हैं इतिहास हमारे सामने सारी सामग्री कालक्रमानुसार प्रस्तुत करता है। इसी रूप में हम भाषा का इतिहास भी जान सकते हैं। भाषा जिस तरह उत्पन्न हुई उसी तरह लुप्त भी हो गई। ऐसा क्यों घटित हुआ इसका उत्तर इतिहास द्वारा ही मिलेगा। इतिहास तथ्यों के चयन और उन्हें कालक्रमानुसार रखकर परखने का काम करता है। इतिहास कार्य तथा कारण के संबंध का विश्लेषण करता हैं इतिहास में अतीत को वर्तमान से जोड़ा जाता है। इस तरह अतीत का वर्तमान में उपयोग किया जाने लगता है। भाषा में होने वाले परिवर्तनों की उसके बदलते रूपों की ठीक-ठीक विवेचना ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर ही की जा सकती है। भाषाओं का इतिहास लिखने में यह प्रक्रिया अत्यंत उपयोगी है।

Scanned with ACE Scanner

इस प्रकार भाषा-विज्ञान और इतिहास को घनिष्ठ माना जा सकता है। ये दोनों एक-दूसरे के सहायक हैं। कहीं भाषा-विज्ञान की मदद से प्राचीन अभिलेखों, शिलालेखों, सिक्कों पर अंकित भाषाओं आदि का अध्ययन करते हुए पुराने इतिहास के अज्ञात और अंधेरे में डूबे पक्ष को उजागर किया जा सकता है तो कहीं इतिहास की मदद से शब्दों के अर्थों को सुनिश्चित किया जाता है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान का आधार ही इतिहास है। शब्द और अर्थ किस प्रकार बदले यह इतिहास द्वारा ही ज्ञात किया जाता है। इसी तरह भाषाओं के ऐतिहासिक या पारिवारिक वर्गीकरण में भी इतिहास का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इतिहास के तीनों रूपों राजनीतिक, धार्मिक तथा समाजिक से भाषा-विज्ञान के संबंध को निम्नलिखित रूप में दिखाया जा सकता है–

(a) सामाजिक इतिहास–सामाजिक इतिहास के द्वारा ही यह तथ्य जाना जाता है कि समाज में प्रचलित परंपराएँ किस प्रकार भाषा को प्रभावित करती है। भारतीय भाषाओं में नाते-रिश्ते मूलक शब्दावली एवं उन वाचक संज्ञाओं का जितना प्रयोग मिलता है। उतना विश्व की अन्य भाषाओं में नहीं अंग्रेजी में जहां ब्रदर इन ली और सिस्टर इन ला तथा अंकल-आंटी में अनेक संध समाहित हो जाते हैं। वहाँ हिन्दी में साला, जीजा, साली, भाभी, मामा, चाचा, चाची, बुआ, ताई, ननद आदि अलग-अलग शब्द मिलते हैं। भारतीय समाज में रिश्तों के महत्त्व का प्रतिपादन इन अलग-अलग शब्दों से हो जाता है।

(b) राजनीतिक इतिहास–इतिहास में इस प्रकार से ज्ञात होता है कि किस प्रकार शासकों की भाषा शासित देशों में प्रचारित हो जाती हैं। भारतीय भाषाओं खासकर हिन्दी के शब्द संसाधन पर ध्यान दें तो स्पष्ट होगा अरबी, फारसी, अंग्रेजी, तुर्की, फ्रेंच और पुर्तगाली शब्दों का आगमन शासन परिवर्तन के साथ-साथ हुआ है। पूर्वी द्वीप समूहों में संस्कृत के शब्दों की अधिकता का कारण इसके जरिए समझा जा सकता है।

(c) धार्मिक इतिहास–इतिहास का यह भेद धर्म या सम्प्रदाय पर आधारित भाषा संबधी अनेक समस्याओं का उत्तर देता है। उदाहरण के लिए भारत में हिन्दी, उर्दू समस्या, हिन्दुओं की भाषा में संस्कृत शब्दों की बहुलता और मुसलमानों की भाषा में अरबी फारसी के शब्दों की अधिकता को लिया जा सकता है। भाषा-विज्ञान के अध्ययन से ही धर्म के प्राचीन रूप को जाना जा सकता है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार **"धार्मिक इतिहास ही हस प्रश्न का उत्तर देता है कि क्यों बंगाली तथा मराठी में ब्रजभाषा में भी कुछ रूप आ जाते हैं या एक ही गांव में रहने वाले हिन्दू की भाषा क्यों अपेक्षाकृत अधिक संस्कृत मिश्रित है तो मुसलमान की भाषा अधिक अरबी, फारसी मिश्रित। धर्म के कारण ही बहुत सी बोलियां अन्यों की तुलना में महत्त्वपूर्ण होकर भाषा बन जाती है। मध्ययुग में ब्रजभाषा और अवधी के महत्त्व का कारण हमें धार्मिक इतिहास में ही मिलता है। दूसरी ओर धर्म के प्राचीन रूप की बहुत-सी गुत्थियाँ भाषा-विज्ञान से सुलझ जाती हैं। एक देश से दूसरे देश पर धार्मिक प्रभाव के अध्ययन में धर्म से सम्बद्ध शब्दों का अध्ययन बड़ी सहायता करता है। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे से सहायता लेते हैं।"**

(viii) भाषा-विज्ञान और भूगोल–भाषा को मिट्टी से जुड़ा माना जाता है। भाषा की पहचान भूगोल के आधार पर ही बनती है। चीनी, जापानी, इतालवी, हिन्दी, मराठी, बांग्ला और उड़िया आदि। भाषाओं के नामकरण का आधार भी भूगोल ही है। प्रायः भौगोलिक परिस्थितियाँ वहाँ के निवासियों को प्रभावित करती है। अतएव भौगोलिक कारणों से उच्चारण गत विभिन्नता भी देखी जाती है। शीत प्रधान देशों में अधिक ठंड के कारण वहाँ के निवासी मुँह कम खोल कर उच्चारण करते हैं जिससे उच्चारण में अस्पष्टता देखी जा सकती है। इसके विपरीत गर्म देशों की सरलता से मुंह खोलने के कारण एक तरफ जहाँ ध्वनियों का अधिक्य रहता है। वहीं दूसरी ओर उच्चारणों में भी यथेष्ट स्पष्टता रहती है।

दुनिया की हजारों भाषाओं में सीमा-निर्धारण में भूगोल की सहायता ली जाती है। जिन सीमावर्ती स्थानों पर दो या तीन विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं, वहाँ भूगोल के साथ ही भाषा वैज्ञानिक साधन भी अपनाऐं जाते हैं। जहाँ जिस भाषा तत्त्व की प्रधानता होती है वहाँ उसी को आधार बनाकर उस क्षेत्र को किसी विशिष्ट भाषा के अंतर्गत घोषित किया जाता है।

भौगोलिक पदार्थों के ज्ञान में भी भूगोल की जरूरत पड़ती है। पेड़ पौधे वनस्पतियों, नदी, पर्वत, प्रदेश, देश, द्वीप, महाद्वीप आदि के ठीक-ठीक ज्ञान के लिए भूगोल की ही सहायता ली जाती है। किसी भाषा का कम या अधिक प्रसार भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। समतलों की भाषा अधिक विस्तृत क्षेत्र में फैलती है और विषम पर्वतीय प्रदेशों की भाषा सीमित क्षेत्र में ही सिमट कर रह जाती है। भाषाओं में परिवर्तन का आधार भी भौगोलिक परिस्थितियाँ ही है। समतलों की भाषा में परिवर्तन की जितनी संभावना होती है। उतनी विषम स्थलों की भाषा में नहीं, उनमें स्थिरता अधिक होती है। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण ही उच्च जर्मन और निम्न जर्मन में ध्वनि परिवर्तन के कारणों को बड़ी आसानी से समझा जा सकता है। भौगोलिक पदार्थों के ज्ञान के साथ अर्थ विचार में भी भूगोल भाषा-विज्ञान की बड़ी सहायता करता है। उष्ट्र का अर्थ भैंसा से ऊँट कैसे हो गया सैंधव का अर्थ घोड़ा और नमक ही क्यों हुआ या संस्कृत में कश्मीर का अर्थ केसर क्यों है आदि। समस्याओं

Scanned with ACE Scanner

पर विचार करने में भी भूगोल की सहायता अपेक्षित है। भाषा-विज्ञान की एक अधुनातन शाखा भाषा भूगोल तो भूगोल से और भी अधिक सम्बद्ध है और इसकी अध्ययन पद्धति भी भूगोल की पद्धति पर ही बहुत कुछ आश्रित है दूसरी ओर किसी जगह के प्रागैतिहासिक कारण के भूगोल के अध्ययन में भाषा-विज्ञान भी पर्याप्त सहायता प्रदान करता है। भाषा-विज्ञान की पर्याप्त सहायता प्रदान करता है। भाषा भूगोल का एक उल्लेखनीय विषय है। भाषा द्वीप का अध्ययन कभी-कभी किसी भाषा के क्षेत्र में कोई अन्य भाषाभाषी समुदाय आकर बस जाता है। इसे भाषाद्वीप कहते हैं। भाषाद्वीप के निर्माण के दो प्रमुख कारण है पहला राजनैतिक या आर्थिक कारणों से स्थानान्तरण और दूसरा किसी एकान्त प्रदेश में सभी जनजातियों के इर्द-गिर्द सभ्य जातियों का बस जाना। मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा एवं महाराष्ट्र (गढ़चिरोली) में भी ऐसे कई भाषा द्वीप मौजूद है। स्थानान्तरण के उदाहरण अण्डमान निकोबार में देखे जा सकते हैं।

(ix) भाषा-विज्ञान और शरीर विज्ञान–मुख से निकली हुई ध्वनि ही भाषा का मूल है। इस ध्वनि के उच्चारण में हवा किस प्रकार भीतर से बाहर आती है, स्वरयंत्र, स्वरतंत्री नासिका विवर, कौवा, तालु, दाँत, जीभ, ओठ, कंठ मूर्धा तथा नाक के कारण हवा एवं उसके कारण निःसृत ध्वनि में क्या परिवर्तन होते हैं, कान किस प्रकार ध्वनि ग्रहण करते हैं आदि का अध्ययन भाषा-विज्ञान की परिधि में आता है। इस अध्ययन में शरीर विज्ञान से यथेष्ट मदद मिलती है। लिखित भाषा नेत्रों द्वारा पढ़ी और ग्रहण की जाती है। इस प्रक्रिया को भी समझने के लिए भाषा-विज्ञान को शरीर विज्ञान से सहायता लेनी पड़ती है। इसी प्रकार सुरलहर, अक्षर, बलाघात आदि का अध्ययन भी भाषा-विज्ञान के लिए शरीर विज्ञान के सहयोग बिना कष्ट साध्य है। दरअसल भाषा-विज्ञान की ध्वनि प्रक्रिया का आधार जो विचारों के उद्‌गम से लेखक विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण से लेखक विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण तक है। शरीर विज्ञान से ही जुड़ा हुआ है।

पहले बताया जा चुका है भाषा-विज्ञान का आधार है भाषा और इस भाषा के लिए दो पक्षों अथवा दो व्यक्तियों की उपस्थिति अनिवार्य है। संप्रेषणीयता की अपेक्षा ग्राह्यता के लिए वक्ता और श्रोता की अपेक्षा होती है। वक्ता द्वारा कुछ अर्थ ग्रहण करता और जवाब देता है।

यह प्रक्रिया वार्तालाप बन जाती है। जिसमें श्रोता और वक्ता का स्थान और कार्य परस्पर विनिमय बन जाता है। इस प्रक्रिया का विश्लेषण करें तो स्पष्ट हो जाता है कि वागवयवों की मदद से वक्ता से वक्ता जो कुछ कहता है वह वक्तव्य ध्वनि-तरंगों की सहायता से श्रोता तक पहुँचता है। श्रोता की ज्ञानेन्द्रिय उसे ग्रहण करती और मन तक पहुँचाती हैं, तो उसे निरर्थक या सार्थक सिद्ध करते हुए श्रोता को तदनुसार ग्रहण करने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार ध्वनि विज्ञान के अध्ययन के लिए प्रथमतः वक्ता की ध्वनि द्वितीयतः ध्वनि तरंगें और तृतीयतः श्रोता द्वारा ग्रहण इन तीन प्रक्रियाओं का ज्ञान अनिवार्य होता है। ध्वनि विज्ञान के दो पक्ष हैं रचना पक्ष और बोध पक्ष। रचना पक्ष का आधार वक्ता है और बोध पक्ष का श्रोता। रचना पक्ष के ज्ञान के लिए वागवयों की रचना एवं बनावट के बारें में जानना जरूरी है और बोध पक्ष के ज्ञान के लिए श्रोतेन्द्रिय की रचना एवं बनावट का। शरीर विज्ञान के ज्ञान से ही इन दोनों पक्षों के ज्ञान संभव है। शरीर विज्ञान के ज्ञान से ही यह समझना संभव हो पाता है कि तार केन्द्र, मध्य, आरोह, अवरोह, संगीतात्मक ध्वनि, बलाघात आदि के क्या कारण हैं? मुख-सुख या प्रयत्न लाघव की प्रवृत्ति शब्दों के रूप परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस मुख-सुख की प्रवृत्ति की प्रकृति और कारणों पर शरीर विज्ञान के द्वारा ही प्रकाश पड़ता है। वागेन्द्रिय के अवयव जिह्वा, दाँत, ओंठ, फेफड़े आदि। यद्यपि मुख्य रूप से भोजन, श्वास, प्रश्वास आदि कार्यों से सम्बद्ध हैं, लेकिन इनकी मदद से समस्त विश्व की आश्रयभूत भाषा जैसी दिव्य शक्ति का उदय होता है। आज शिशुओं से लेकर वयस्क लोगों तक में उच्चारण संबंधी दोषों को ठीक करने में भाषा वैज्ञानिक शरीर विज्ञान की सहायता को अपरिहार्य सिद्ध कर रहे हैं। वागेन्द्रिय में दोष न होते हुए भी श्रवणेन्द्रिय के दोष के कारण अर्थात् गलत सुनकर गलत उच्चारण के जो उदाहरण मिलते हैं। उनमें भाषा वैज्ञानिक शरीर विज्ञान को अत्यंत उपयोगी समझ ही निदान का पथ अपनाता है।

(x) भाषा-विज्ञान और सूचना तकनीक–सूचना तकनीक आधुनिक युग की एक बड़ी जरूरत है। हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के पठन-पाठन विश्लेषण से सम्बद्ध मुद्दों के साथ-साथ भाषा-विज्ञान के अनेक पहलुओं को इस सूचना तकनीक में प्रभावित किया है। आज भाषा-विज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र में यह एक नया आयाम जुड़ गया है। वस्तुतः भाषा तकनीक और भाषाई कम्प्यूटरीकरण को कुछ विद्वान एक ही विधा मानते हैं लेकिन सच यह है कि कम्प्यूटरीकरण भाषा तकनीक का एक हिस्सा मात्र हैं। भाषा तकनीक तो एक विराट संकल्पना है। भाषा तकनीक में स्कूल रूप से कई क्षेत्रों में अध्ययन विश्लेषण एवं शोध कार्य किया जा रहा है। जिनमें प्रमुख हैं–मूक एवं बधिक लोगों के लिए भाषा बोध शिक्षण, वाचन, श्रवण, संकेत भाषा आदि के लिए उपकरणों का विकास, भाषा विकारों के उपचार के लिए निदान उपकरण अन्य उपग्रहों से प्राप्त ध्वनि संकेतों का अध्ययन

Scanned with ACE Scanner